परब्रह्मणे श्रीरामाय नम

आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नम

महामहोपाध्यायपदविकजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यस्वामिश्रीरघुवराचार्यवेदान्तकेसरिणा

प्रणीता

श्रीमन्त्रराजमीमांसा

श्रीमदाचार्यपादाब्जं निधाय हृन्निकेतने ।
श्रीमन्त्रराजमीमांसां कुर्वे नत्वा गुरुं मुदा ॥१॥

अथास्य षडक्षरात्मकस्य श्रीराममन्त्रस्य श्रद्धातिशयेनोपवर्णयद्भिर्महर्षिभिर्निरतिशय माहात्म्यमुदटङ्कि । वेदेऽप्यस्यानवधिकमहिम्नस्तारकमनोरसकृन्महत्त्वमाम्नायत इति तद्विषयमवलम्ब्यायं प्रस्तूयते प्रबन्धः ॥१॥

नचान्येषु देवतान्तरोपास्तिप्रचुरतरेषु मन्त्रेषु सत्सु किमनेन वैशिष्ट्यमिति वाच्यम् । देवतान्यत्त्वफलान्यत्वा, द्यभिदधानेभ्यो मन्वन्तरेभ्योऽस्त्येवास्य षडक्षरलक्षणस्य श्रीराममनोर्वैशिष्टयम् । तथाहि–प्रमाणतमपांचरात्रागमान्तर्गत, बृहद्ब्रह्मसंहितायाम् —

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः ।
जानाति भगवॉञ्छम्भुज्वलत्पावकलोचनः ॥

शोभायुक्त आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीके चरण कमल को मै अपने हृदय मन्दिर मे स्थापित करके तथा श्रीगुरुदेव जगद्गुरु श्रीहनुमदाचार्यजी को गार्ष्टाग प्रणिपात नमस्कार करके श्रीमन्त्रराज मीमासा को प्रकाशित करता हूँ ।

इस षडक्षर स्वरूप श्रीराममन्त्र का श्रद्धाके साथ बर्णन करने वाले महर्षियो ने अपने अपने ग्रन्थों मे बहुत महात्म्य लिखा है और वेद मे भी इस सर्वोत्कृष्ट महिमा शाली तारक श्रीराम मन्त्र का वारवार महत्व कहा गया है। इसलिये श्रीराममन्त्र के विषय मे यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया जाता है ॥१॥

इस पर किसी को यह शंका नही उठानी चाहिये कि इस तारकमन्त्र के अतिरिक्त दूसरे देवताओं की उपासना से पूर्ण और भी अनेक मन्त्र विद्यमान है तब इस मन्त्र से क्या विशेष लाभ है। देवता भेद और फल भेद आदि कहने वाले दूसरे मन्त्रों से इस षडक्षरात्मक श्रीराम मन्त्र मे अवश्य वैशिष्ट्य है । इसी विषय का अब अग्रिम प्रमाणो से विवेचन किया जाता है। परम प्रमाणभूत पञ्चरात्रशास्त्र के अन्तर्गत बृहद्ब्रह्मसंहिता मे इस प्रकार श्रीराममन्त्र के लिये लिखा है कि "जाज्वल्यमान अग्नि नेत्रधारी गिरिजापति भगवान् शम्भु इस श्रीराममन्त्र के महत्व को जानते हैं ।"

इत्यादिपद्यैस्तथागस्त्यसंहितायाम्=

सुतीक्ष्णमन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः ।

वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः । मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुपकारकः ॥

इत्यस्याधिकफलप्रदत्वेन वैशिष्टयमाचष्टे। एवं वृद्धहारीतस्मृतौ ।

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रह्म गद्यते। सर्वैश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥

एतमेव परं मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ।
ऋषयश्च महात्मानो मुक्ता जप्त्वा भवाम्बुधौ ॥६।२४१।

एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्तवान् ।
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम् ॥६।२४२।

एष वै सर्वलोकानामैश्वर्यस्यैव कारणम् ।
इममेवजपन्मन्त्रं रुद्रस्त्रिपुरघातकः ॥६।२४४॥

अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाः कृताः ।
श्रियो रमणसामर्थ्यात्सौन्दर्याद्गुणगौरवात् ॥६।२४८।

इत्यादिवचनैरस्यैव सर्वातिशायिफलवत्त्वमुत्कृष्टत्वञ्चाभिदधौ ॥२॥

एवं शिवसंहितासनत्कुमारसंहितास्कन्दपुराणादिवचोभिरस्यमहत्त्वमतिशेतेऽखि-

इन पद्यो से स्पष्ट वर्णन किया है। अगस्त्य संहिता मे भी "हे सुतीक्ष्ण ! समस्त गाणपत्य शैव, शाक्त, और सौर मन्त्रोमे अभीष्ट फलको देनेवाले वैष्णव मन्त्र ही श्रेष्ठ माने जाते हैं और वैष्णव मत्रो मे भी सबसे श्रेष्ठ और अधिक फल देनेवाला श्रीराममंत्रही है यह अन्यसब मंत्रोका और विश्वकाभी उपकारक है । अतएव इस मत्रको 'मत्रराज' कहा गया है । इस प्रकार इस श्रीराममंत्रको अधिक फलप्रद बताकर दूसरे मंत्रोसे विशिष्टता दिखायी है वृद्धहारीत स्मृतिमे– "भगवान् श्रीरामजी का यह षडक्षर 'राममंत्र' तारक ब्रह्म कहागया है । यह मंत्र मनुष्योंको सर्व प्रकारके ऐश्वर्योंको देकर सर्वमनोरथोंको पूर्ण करता है । इस सर्वोत्कृष्टमंत्रको जपकर ब्रह्मरुद्रादिदेव और ऋषि महात्मो भवसागरसे पार उतर गये है। इस मत्र को जाप करके अगस्त्य मुनि ने रुद्रत्व को प्राप्त किया है काश्यप ब्रह्मत्वको और कौशिक मुनि अमरेशताको प्राप्त हुए हैं। यह मन्त्र सब प्राणियोके ऐश्वर्य का कारण है । इस मत्र के जप करनेसे रुद्र त्रिपुरासुर के वधमे समर्थ हुए है ।

भगवान के मंत्र अनन्त है परन्तु भगवान के लक्ष्मी रमण सामर्थ्य, अनुपम सौन्दर्य व और अनेक गुणों के गौरव से इस मंत्र के समान अन्य कोई मंत्र नहीं है ।"

इत्यादि वचनोंसे इसी श्रीराममत्रका सर्वोपरि "फलदायकत्व" और सर्व श्रेष्ठत्व बताया गया है । इसी प्रकार शिव संहिता सनत्कुमार सहिता और स्कन्द पुराण आदिके वचनोंसे भी श्रीमंत्रराज का

लामरमन्त्रमहिम्न इति स्पष्टमेव शास्त्ररहस्यवेदिनाम्। तेषां कानिचन वचनान्यत्र निर्दिश्यन्ते ।

अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम्। एष मन्त्रश्च विज्ञेयस्तारकश्चेति संज्ञितः॥
कल्पद्रुमइतिस्फीतः साधकानां फलप्रदः। सर्वेषां मन्त्रवर्णानां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ॥

तेषु वैष्णवमन्त्रेषु राममन्त्र फलाधिकः ।
विश्वरूपस्य ते राम ! विश्वशब्दाहिवाचकाः ॥
तथैव मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां वीजमक्षयम् ।
अचिन्त्योय महाबाहो ? मंत्रश्चिन्तामणिर्विभोः ।
विहायैनं विमूढात्मा ततश्चेतश्च धावति ॥इति॥

एभिर्वचननिचयैर्निरस्तसमस्तविशयैर्भ्रमप्रमादलिप्साद्यशेषदोषादूषितान्तः करणैः शिष्टविशिष्टपरिवृढरपास्तहेयगुणानवधिककल्याणगुणार्णवभगवच्छ्रीरामरहस्यवेदिभिराञ्ज-नेयाब्जयोनिहैरण्यगर्भपराशरद्वैपायनादिभिश्चास्यैव स्वीयनिःश्रेयसैकसाधनतया सादरपरिगृहीतत्वम् ॥३॥

नन्वागमस्मार्तप्रमाणैरवश्यमस्य मनोरनितरसाधारणफलातिशयाधायकत्वमुद्-धुष्यते। नचाम्नायिकैः कैरपि प्रमाणैस्तत्रत्रैवर्णिकानामेवाधिकारात्। अस्मिंस्तु चातुर्व-

महत्व अन्य समस्त देवोंके मन्त्रों की महिमा को अतिक्रमण करने वाला कहा गया है। यह बात मन्त्र शास्त्रके रहस्यको जानने वाले खूब जानते है। इनशास्त्रों के कुछ वाक्य यहाँ पर उद्धृत कियेजाते है। शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं, कि 'मैं तुम्हें ब्रह्मसंज्ञक तारकमंत्रका उपदेश देता हूँ, इसमंत्र की 'तारकमन्त्र' ऐसी संज्ञा है। यह मन्त्र साधक जनोंको कल्पवृक्षके समान फल देनेवाला है। समस्त मन्त्रो से वैष्णव मन्त्र ही श्रेष्ठ कहे गये है और उन वैष्णव मन्त्रो मे भी श्रीराममन्त्र ही अधिक फल का देने वाला है। हे राम! आप विश्वरूप हे अतएव विश्व के समस्त शब्द आपके वाचक है। और इसी प्रकार आपका मूलमन्त्र जो श्रीराम मन्त्र है वह समस्त मन्त्रो का और शब्दों का भी मूल है। हे महाबाहो! यह मन्त्र चिन्तामणि अचिन्त्य (अतर्कित) शक्ति वाला है। इस मन्त्र रूप चिन्तामणि को भूलकर मूढ मनुष्य अन्य वस्तुओ की लिप्सा से जहा तहा दौडता है।" इन वचनो से (यह मन्त्रराज) समस्त शकाओ से रहित, भ्रम प्रमाद और लिप्सा आदि समस्त दोषो से रहित शुद्ध अन्त करण वाले सज्जन पुरुषो मे विशेष समादरणीय है और निन्द्य गुण रहित तथा अनन्त कल्याण गुण सागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के रहस्य को जानने वाले श्रीपवनकुमार, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर और द्वैपायनादि महर्षियो ने इसी श्रीराममन्त्र को मोक्ष का एक मात्र साधन मानकर प्रेम के सहित ग्रहण किया है॥३॥

अब यहा शङ्का यह होती है कि पाञ्चरात्र आदि आगमो से और स्मृति पुराणो से तो अवश्य इस श्रीराममन्त्र को सब मन्त्रो से अधिक फलदायी बताया गया है। परन्तु किसी भी वैदिक प्रमाण से इसका वर्णन अथवा महत्व नही जाना गया। क्योंकि वेद मे और वैदिककर्म कलाप

र्णस्याप्यधिकारः 'सर्वेषामधिकारो वै ज्ञातव्यो दैशिकोत्तमैः' इत्यादिवचनैरवगम्यत इति कुतोऽस्यवैदिकत्वं कुतस्तराञ्चाम्नायवचोभिरर्चितत्वमितिचेदनभिज्ञो भवान् मंत्र-शास्त्रस्य। तथैतत्कृत्स्नं भवदुरोगह्वरगर्भगुम्फितं शुद्धमपित्वदीयशंकातककलंकपङ्किलं सामंजस्यमुपेयात्तथेदमग्रिममभिधास्यमानं सावधानमाकर्णय ॥४॥

अत्र चेदमेव प्राग्विचिन्त्यते। यत्किन्तावद्भवदभिमतं वैदिकपदवाच्यतावच्छेदकम्

१—वेदानुकूलप्रमाणप्रतिपाद्यत्वम्। २—वेदोपबृहं णेतिहासपुराणप्रतिपाद्यत्वम्। ३—वेदविहितत्वविशिष्टकृतिसाध्यत्वम्। ४—वेदोदित फलार्थिप्रवृत्तिविधेयत्वम्। ५—वेदैकसमधिगम्यत्वम्। ६—वेदैकभागब्राह्मणदृष्टार्थाधिकृतत्वम्। ७—वेदांशमन्त्र-मात्रदृष्टार्थकत्वम्। ८—वेदोभयभागदृष्टार्थकत्वम्। ९—वेद पदाभिधेयार्थसम्बन्धित्वम्। १०—वेदोच्चरितानुपूर्वीकत्वं वा।

एष्वेवार्थेषु जिज्ञासुजनाकांक्षितस्य वैदिकपदवाच्यतावच्छेदकस्यान्यतमार्थे निर्भ-रत्वम्। तत्र विशिष्टबोधं प्रति तदवच्छेदकमते हेतुतया तद्विषय एव तावत्प्रथमं विवि-

मे त्रैवर्णिकका ही अधिकार देखा जाता है और इस श्रीरामम‌न्त्र के तो चारों वर्ण अधिकारी है। यह बात "सर्वेषा" इस श्लोकसे स्पष्ट ही ज्ञात होती है, तब इस मन्त्र को कैसे वैदिक माना जावे ? और किस प्रकार वेद भगवान् की इस मन्त्र मे प्रतृति कही जा सकती है। इस शङ्का का अब समाधान किया जाता है। आप मन्त्र शास्त्र के अनभिज्ञ हे अतएव ऐसी शंका करते है। जिस प्रकार यह सब आपके हृदय गर्भ मे समाया हुआ शुद्ध होते हुए भी आपकी शंका रूप कलक पंकसे पंकिल हुआ शुद्धता को प्राप्त हो, उसी प्रकार हम यह आगेका विवेचन करते है। सावधान होकर सुनिये ॥४॥

यहा पर पहले यही विचार किया जाता है कि आपका अभिमत 'वैदिकत्व' क्या है? इसके लिये यहा १० कल्प किये गये हे वे इस प्रकार हे।

१. वेदके अनुकूल जो अन्य प्रमाण हैं (जैसेकि स्मृति, इतिहास, पुराण, दर्शनशास्त्र तथा अन्य आप्तो के प्रणीत ग्रन्थ) उनसे जिसका प्रतिपादन किया जाता हो (अर्थात् वेद मे हो या न हो) उसे वैदिक कहा जा सकता है। २ वेद के उपबृहण केवल इतिहास और पुराण से जिसका प्रतिपादन किया जाता हो। ३ वेद से विहित हो और अर्थीजन के प्रयत्न से साध्यहो। ४. वेदमें कहे गये जो फल है उनकी कामनावाले अर्थोकी प्रवृत्ति का जो विधेय हो। ५. एक मात्र वेद से जिसका ज्ञान होता हो। ६ वेदके एक भाग ब्राह्मण भाग मे देखे गये प्रयोजन के लिए जो अधिकृत हो। ७ वेदका अश जो केवल मन्त्रभाग हे उससे जिसका प्रयोजन देखा गया हो। ८ वेदके उभय भागमे जिसका प्रयोजन दखा गया हो। ९ वेद पदसे कथित जो अर्थ तत्सम्बन्धी जो हो। १० वेद मे जिसकी आनुपूर्वी साक्षात् कठरव से कही जाती हो।

इन्ही १० दस अर्थोमे जिज्ञासुजनों से आकांक्षित वैदिक पदके अर्थका समावेश है। ऐसा एक नियम है कि यदि विशेषण युक्तका ज्ञान करना हो तो प्रथम उसके विशेषण का ज्ञान करना

च्यते । लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिरिति न्यायविदो वदन्तस्तदुभयव्यतिरेकेण न किञ्चिदपि प्रसिद्धिपदमध्यास्त इति मन्वते ।

तस्माद्वेदलक्षणं तावदादौ वाच्यं तदेव तु न संभवति । मन्त्रब्राह्मणान्यतरशब्दसमूहो वेद इति चेन्न । मन्त्रब्राह्मण प्रकारयोरद्याप्यनिश्चयात् । प्रमाणतया प्रगृहीतेषु प्रत्यक्षानुमानागमेष्वन्तिमस्य वेदत्वमित्यपि नानवद्यम् । स्मृत्यादावतिप्रसंगात् । अपौरुषेयत्वविशिष्टवाक्यत्वमेव तदित्यप्यविचारसहम् । भगवदनुभवाहितकृतिजन्यत्वेन पौरुषेयत्वात् । नच विग्रहवतोऽनिर्मितत्वादपौरुषेयत्वमितिवाच्यम् । भगवतोऽपि "अग्निर्मूर्धादिवः ककुत्" "सहस्रशीर्षापुरुषः" इत्यादिपरश्शतैः प्रमाणैरखिलानुग्रहविग्रहसमर्थत्वात् । कर्मकृतकलेवरकर्तृकत्वाभावादपौरुषेयमित्यपि नावसेयम् । कर्मात्त कलेवरसचिवैरेवाग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पत्त्याम्नानात् । "ते तपोऽतप्यन्त, तेभ्यस्तपो तेपातेभ्यस्त्रयोवेदा असृज्यन्त, अग्नेऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः" इति । अतएव "न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः" (सां.द ५।४४) इति कपिलवचोऽपि संगच्छते । एव प्रमाणमपि वेदपदाभिधित्सते वस्तुनि न किञ्चिदुपलभ्यते । "ऋग्वेदं

आवश्यक है, इसलिये विशेषण का ज्ञान विषय जो वेद है उसी का प्रथम विवेचन किया जाता है ।

'प्रत्येक वस्तुकी सिद्धी उसके लक्षण और प्रमाण से हुआ करती है" इस प्रकार कहते हुए न्याय शास्त्रविद् "लक्षण और प्रमाण के बिना किसी भी वस्तुकी सिद्धी नही होती" यह मानते है।

इसलिये प्रथम वेद का लक्षण कहना चाहिये । किन्तु वह असभवसा प्रतीत होता है । यदि मन्त्र शब्द समुदाय को अथवा ब्राह्मण शब्दसमुदायको वेद माना जावे तो यह ठीक नही क्योकि 'किस लक्षणयुक्त शब्द समुदाय को मन्त्र अथवा ब्राह्मण कहना" इसका तो अभीतक निर्णय ही नही हुआ है । प्रमाण रूप से माने गये प्रत्यक्ष, अनुमान, और आगम इन तीनो मे अन्तिम आगम प्रमाण को ही वेद मानले, यह पक्षभी निर्दोष नहीं है। क्योकि यह लक्षण स्मृति (और आधुनिक वाक्यो) मे चले जाने के कारण अतिव्याप्ति दोषग्रस्त है। अपौरुषेय (पुरुषोच्चरित नही) ऐसा वाक्य भी वेद का लक्षण विचार से सगत नही है । क्योकि भगवान के अनुभव सहित जो उनका प्रयत्न है उससे जन्म होने के कारण पौरुषेय ही है । कदाचित् यह कहा जावे कि भगवान् से वेद की उत्पति होने पर भी वह भगवान् के अशरीरी होने के कारण शरीर जन्य न होने से अपौरुषेय ही है, तो यह कथन भी ठीक नही । भगवान् को भी 'अग्नि मस्तक है' इत्यादि अर्थवाली श्रुतियो से और भी अनेक प्रमाणो से अखिल प्राणियो के ऊपर दयाधारी शरीर युक्त कहा गया है । 'कर्मकृत शरीरधारी से वेद प्रणयन नही किया गया अत वह अपौरुषेय ही है' यह कहना भी अयुक्त है। क्योकि कर्म के परवश होकर शरीर धारण करने वाले अग्नि, वायु और आदित्य नामक देवो से वेदोकी उत्पत्ति वेदो मे ही कही गयी है। श्रुति का अर्थ इस प्रकार से है—उन तीन देवो ने तप किया, उनके तप करने से तीन वेदो की उत्पत्ति हुई। अग्नि से ऋग्वेद । वायु से अजुर्वेद और आदित्य से सामवेद ।

भगवोध्येमि, यजुर्वेदं भगवोध्येमि" इत्यादि वाक्यानि तु सिषाधयिषितार्थोदरवर्तितयाऽत्माश्रयदोषाक्रान्तत्वेनाश्रद्धेयप्रमाणत्वात् एवं च लक्षणप्रमाणविरहिणो वेदपदवाच्यस्य गगनकुसुमायितत्वेन न प्रेक्षावद्बुद्धिगोचरत्वमिति ॥५॥

तदेतच्छंकाकलङ्कितमनसां दुर्मेधसामापातरमणं वचो वैदिकाचारचणैरनादरणीयम् । अस्मत्पूर्वजैर्मनुयाज्ञवल्क्यवसिष्ठनारदवाल्मीकिपराशरव्यासशुकादिभिः सर्वस्याप्यर्थस्यस्वकीयतन्त्रेषुसुदृढं निर्णीतत्वात् । यदुक्तं—'वेदलक्षणमसंभवि' तदयुक्तम् । मंत्रब्राह्मणात्मकत्वस्यैव तल्लक्षणस्य वक्तुं शक्यत्वात् । अत एव महामुनिर्जैमिनिः "तच्चोदकेषुमंत्र" (२।१।३२) इति मंत्रलक्षण विलक्षणमभिधाय "शेषे ब्राह्मणशब्दः" (२।१।३३) इत्यभ्यर्णमेव ब्राह्मणलक्षणमसूत्रयत् । यद्युभयोर्वेदपदेन नोपादानंस्यात्तदा शेष इति कथनस्यानर्थक्यमेवाभविष्यत् । नहि स्वरूपेण भिन्नयोः स्वतन्त्रयोरन्यतरस्मिन्नस्यायं 'शेष' इति व्यवहरन्ति विशेषज्ञाः । तथा चात्र शबरस्वामिनः 'अथ किं लक्षण ब्राह्मणं' मंत्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदस्तत्र मंत्रलक्षण उक्ते परिशेषसिद्धित्वाद् ब्राह्मणलक्षणमवचनीयम् मंत्रलक्षणेनैव सिद्धम् । यस्यैतल्लक्षणं न भवति तद्ब्राह्मणमिति परिशेषसिद्धंतद् ब्राह्मणम्"

अतएव "उत्पति श्रुति होने के कारण वेदो की नित्यता नही कही जा सकती" यह साख्यकार का वचन भी सगत होता है। इस प्रकार वेदका लक्षण नही बन सकना और वेद पदसे कही जाने वाली वस्तुमे कोई प्रमाण भी नही मिलता। 'ऋग्वेद पढता हूँ' 'यजुर्वेद पढता हूँ' इत्यादि वाक्य छान्दोग्य आदि उपनिपदो मे विद्यमान है परन्तु वह तो साधनीय ग्रन्थो के अन्तर्गत होनेके कारण आत्माश्रय दोप संयुक्त होने से उनको प्रमाण भूत मानना श्रद्धा के बाहर है। इसलिये लक्षण और प्रमाण से रहित वेदपदार्थ को आकाश कुसुम के समान होनेसे वे चतुर मनुष्य की बुद्धिके विपय नही हो सकते ॥५॥

इस शका से कलंकित मन वाले दुर्बुद्धि मनुष्यो के ऊपर से ही रमणीय वचन वैदिक आचार मे प्रसिद्ध शिष्ट जनोको अनादरणीय है। क्योकि हमारे पूर्वज मनु, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, नारद, वालमीकि, पराशर, व्यास और शुक आदि महर्पियोने सब अर्थो का अपने अपने ग्रन्थो मे बहुत अच्छी प्रकार से निर्णय किया है। जो कहते है कि 'वेदका लक्षण असंभव है, यह ठीक नही। मन्त्रात्मक अथवा ब्राह्मणात्मक ही वेदका लक्षण कह सकते है। इसीलिये महामुनि जैमिनिने 'प्रेरणात्मक जो वाक्य है वही मन्त्र है' ऐसा विलक्षण मन्त्र लक्षण कह कर वाकी वेद भाग को ब्राह्मण कहा है "ऐसा तुरत ही ब्राह्मण लक्षण के लिए सूत्र पढा। यहा पर यदि दोनो भागों का वेद पद से ग्रहण न होता तो 'शेष' इस कथन का वैयर्थ्य हो जाता। स्वरूप से जो दो पदार्थ स्वतन्त्र होकर भिन्न होते है उन पदार्थो मे यह इसका शेष है ऐसा व्यवहार बुद्धिमान मनुष्य नही करते अत एव यहाँ पर शबर स्वामीजी यह लिखते है कि ब्राह्मण का क्या लक्षण है? मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनो को वेद कहा जाता है इनमे मन्त्र का लक्षण कहने पर बाकी जो बच गया वह ब्राह्मण है" अत ब्राह्मण का लक्षण नही कहना चाहिये। वहाँ तो मन्त्र का लक्षण करने से ही सिद्ध हो चुका कि जिसका यह लक्षण नही है वह ब्राह्मण है यह उन्होने स्पष्ट

इति स्पष्टमभिदधुः । एवं पार्थसारथिमिश्रैरत्रैव शास्त्रदीपिकायां स्वकण्ठरवेणैव "द्विविभागस्य वेदस्यैकभागस्य मन्त्रात्मकस्य लक्षणमुक्तं तत्प्रसंगात् एतद्ब्राह्मणान्येव 'पञ्च-हवींषि' इति वेदप्रयुक्तस्य ब्राह्मणशब्दस्यार्थपरिज्ञानार्थं ब्राह्मणलक्षणाभिधानमवशिष्टं ब्राह्मणमिति" इत्युदीरितम् ॥६॥

एवं यज्ञपरिभाषाप्रकरणे भगवतापस्तम्बेनापि "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इति स्पष्टमुक्तम् ॥७॥

एवं दैवतकाण्डे त्रयोदशाध्यायस्य प्रथमे पादे वाग्वस्तु निर्वचनावसरे 'मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणचतुर्थी व्यावहारिकीति याज्ञिका' इति यास्काचार्याः 'मन्त्र तात्पर्यार्थ-प्रकाशको वेदभागो ब्राह्मणम्' इति च तद्भाष्यकाराः । अत एव च नैघन्टुककाण्डे प्रथमाध्यायस्य प्रथमे पादेवैदिकभागरूपमन्त्रमुद्दिश्य "पुरुष विद्याऽनित्यत्वात्कर्मसम्पत्ति-र्मन्त्रो वेदे" इति निरुक्तावुक्तम् ॥८॥

तथा च "धर्माख्यविषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्" इतिश्लोकवार्तिकवचना-न्मीमांसावसेयत्वमेव धर्मस्येति निश्चयान्मीमांसया चोभयभागस्य वेदत्वं सुस्पष्टमभिहि-तम् । एतदुक्तं भवति । मंत्रब्राह्मणात्मकवेदे केषुचिदभिधायकेषु वाक्येषु मन्त्र इति समाख्या सम्प्रदायविद्भिर्व्यवह्रियते 'मंत्रानधीमह' इति । तद्व्यतिरिक्तभागे तु ब्राह्मण-शब्दस्तैर्व्यवहृत इति । एतल्लक्षणरक्षणात् कल्पान्तराण्यस्मिन्नुपन्यस्तानि निराकृतान्येव

ही कहा है । इसी प्रकार शास्त्रदीपिका नाम के ग्रन्थ मे पार्थसारथि मिश्र नेभी कहा है कि "दो विभाग वेद के है इन दोनो मे से मन्त्र का लक्षण कहा गया । इसी प्रसंग मे "एतद् ब्राह्मणान्येव" इस श्रुति मे ब्राह्मणपद आया है इसके अर्थ परिज्ञान के लिए ब्राह्मण लक्षण कहा गया है कि अवशिष्ट वेद भाग ब्राह्मण है ॥६॥

इसी प्रकार यज्ञ परिभाषा प्रकरण मे आपस्तम्बने भी मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है ऐसा स्पष्ट ही कहा है ॥७॥

इसी प्रकार निरुक्त के दैवत काड के त्रयोदशाध्याय के प्रथम पाद मे वाक्पदार्थ के निर्वचन समय मे 'मन्त्र०'इत्यादि यास्क महर्षि ने कहा है और "मन्त्र के तात्पर्य को प्रकाशित करने वाला वेद का भाग ब्राह्मण कहा जाता है" ऐसा निरुक्त भाष्यकार ने कहा है। इसलिए नैघन्टुककाण्ड के प्रथम अध्याय के प्रथमपाद मे वेदके एक भाग मन्त्र को लेकर 'पुरुष विद्या' आदि निरुक्त मे कहा है ॥८॥

अतएव "धर्मरूप विषय कहने के लिये मीमासाका प्रयोजन है" इस कुमारिल भट्टके वचन से यह जाना जाता है कि धर्मका यथार्थ ज्ञान मीमासा से ही हो सकता है और मीमासा शास्त्रने मन्त्र और ब्राह्मण दोनो को वेद माना है । यह तात्पर्य निकला कि, मन्त्र और ब्राह्मण रूप वेद मे अभिधायक वाक्यो मे 'मन्त्र' यह समाख्या साम्प्रदायिकोने व्यवहृत की है जैसे 'मन्त्रों को पढ़ते है' यही बोला जाता है और उससे व्यतिरिक्तभाग मे 'ब्राह्मण' शब्द का व्यवहार किया है।

वेदितव्यानि। यः किल स्थूलमतिर्वेदानाम्पौरुषेयत्वमनित्यत्वं च ब्रूते स चानाघ्रात-वेदशास्त्रसम्प्रदायरहस्य उपहस्य एव साम्प्रदायिकविपश्चित्परिषदि ॥९॥

तथाहि आम्नायस्यापौरुषेयत्वं 'उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्' (मी. १।१।२९) 'अत एव च नित्यत्त्वम्' (ब्र सू. १।३।२९) इति पूर्वोत्तरमीमांसयोर्महता प्रबन्धेन व्यवस्थापित-त्वान्न केनचिदपोहितुं शक्यम् ॥१०॥

यद्याम्नायः केनचिज्जन्योऽभविष्यत्ततोऽवश्यमध्येतृपरम्परयातथागतादिवत्त-दुपज्ञमज्ञोऽप्यस्मरिष्यत्। न च कर्तुर्विस्मरणं संभवदुक्तिकम्। नचाद्ययावद्वेदकर्तुः स्मरणं क्वचित्केनचित्कृतचरम्। तस्मादयं स्मृतिविरहः खपुष्पायमाणस्य कर्तुरभाव-मवगमयति ॥११॥

न च तैत्तिरीयं कौथुममित्याद्याख्यावशात् तत्तदाम्नायशाखाजनकतयाऽखिल-स्याम्नायस्यापि पौरुषेयत्वमेव। तथा चायं प्रयोगः 'वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्य-त्वात्कालीदासादिवाक्यवत्' किञ्च 'बबरः प्रावाहणिरकामयत' इत्यादि जनिमृतिधर्म-जुषामभिधानाच्चानित्यत्वमपि। नह्यनादिनिधनाम्नायेऽनित्यानामर्वाचीनानां वर्णनं युक्तिसहम्। तस्मात्पौरुषेयत्वमेव वेदानामिति वाच्यम् वैदिकस्य शब्दस्य तदर्थस्य तत्सम्बन्धस्य च शास्त्रकारैर्नित्यत्वेनाभिधानात्। अत एव च 'औत्पत्तिकस्तु शब्द-

इस लक्षणके रखने से दूसरे सब कल्पो का खण्डन हो जाता है। जो स्थूल बुद्धि मनुष्य वेदों को पुरुष के बनाये हुए (पौरुषेय) मानता है और अनित्य भी कहता है वह वेद शास्त्र और सम्प्रदाय के रहस्य को नही जानता और साम्प्रदायिक पण्डितो की सभा म उपहास का पात्र है ॥९॥

इसी वात को कहा जाता है। 'वेद अपौरुषेय है' इस वातको 'उक्तंतु' इस मीमासा सूत्र मे और 'अत एव च' इत्यादि वेदान्त सूत्र मे और बडे प्रबन्ध से इन सूत्रो के भाष्य मे व्यवस्थापित किया गया है यह किसी से हटाया नही जा सकता ॥१०॥

यदि वेद किसीसे उत्पादित किया गया होता तो अध्येतृ परम्परासे बुद्धादि प्रणीत ग्रन्थोंकी तरह उस पुरुष से लेकर अज्ञ ने भी उसका स्मरण किया होता। कर्ताका विस्मरण होना सभवित नहीं है वेद के बनाने वाले का आजतक कही भी किसी ने स्मरण नही किया। इस लिये यह स्मरण का अभाव आकाश पुष्प के सदृश कर्ताके अभाव को ही सिद्ध करता है ॥११॥

यहा पर यह शंका हो सकती है कि, तैत्तिरीय, कौथुम, आदि अनेक वेदों के नाम है यह नाम तित्तिर और कुथुमके रचियता होने से ही हो सकते है। इस लिये तत्तद्वेद की शाखा के रचयिता जब सिद्ध हो गये तो इसीसे समस्त वेद को पौरुषेय (पुरुषो का बनाया हुआ) मान-लेंगे। और यह अनुमान होगा कि वेद वाक्य पौरुषेय है वाक्य होने के कारण आधुकि कालीदास आदि के वाक्यों के समान, इस अनुमान से वेदमे पौरुषेयत्व सिद्ध होगा। इसी प्रकार बबर आदि उत्पत्ति और मरण धर्म वालों के नाम वेद मे आते है इससे वेद अनित्य भी कहा

स्यार्थेनसम्बन्ध' इत्यादिजैमीनीयसूत्रम् 'औत्पत्तिक इतिनित्यं ब्रूमः' इति च शाबर भाष्यं संगच्छते । न चात्र सम्बन्धमात्रस्यैव नित्यत्वमुच्यत इति साम्प्रतम् । सम्बन्धस्य नित्यत्वं सम्बन्धिनित्यत्वमन्तरेणानुपपन्नं सत्सम्वन्धिनित्यत्वमुपस्थापयतीत्येष एव समीचीनः पन्थाः ॥१२॥

'बबर' 'प्रावाहणिः' इत्यादिवाक्यैरपि न शक्यतेऽनित्यतामाम्नायस्य साधयितुम् । न ह्यत्र कश्चिन्मरणधर्मापुमान् विवक्षितो येन वेदस्योत्पत्तिमत्वं स्यात् । केवलमंत्र शब्दसामान्यमुक्तम् । प्रवहणशीलस्य वायोरपि ग्रहणमम्भवात् । एतदेव "आख्या प्रवचनात्" । परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रमितिसूत्राभ्यां प्रत्यपादि महामुनिजैमिनिः । इममेवार्थं श्रीमदाचार्यचरणाः "गतकल्पीयवेदस्य तादृशानुपूर्वीमत एवास्यां सृष्टावपि संस्मृत्योपदिष्टत्वादपौरुषेयत्वमप्यक्षतम्" इत्यादिश्रीमदानन्दभाष्येऽधिदेवताधिकरणे प्रतिपादयाञ्चक्रुः । विस्तरेणायं विषयोऽस्माभिः स्वरचितवेदार्थरक्षायाम्प्रत्यपादीति तत एव विशेषजिज्ञासुभिरवगन्तव्य इति दिक् ॥१३॥

एवञ्चाम्नायस्यापौरुषेयत्वमङ्गीकुर्वत्स्वखिलसम्प्रदायाचार्येषु यः किल गेहेनर्दीस्वदुराशयाहितकुमतितया वेदानाम्पौरुषेयत्वमभ्यधात् स साम्प्रदायिकरहस्यानभिज्ञ

जा सकता है। क्योंकि अनादि वेद मे सादि नाम नही हो सकते । इस लिये वेद पौरुषेय ही हैं। यह शका है अव इसका समाधान किया जाता है। वैदिक शब्द उसका अर्थ और शब्दार्थका सम्वन्ध यह सव शास्त्रकारो ने नित्य कहे है । इसी लिये 'औत्पत्तिक' इत्यादि जैमिनीय सूत्र और उसी सूत्रका भाष्य यह दोनो यथार्थ रूपसे सगत होते है। इस सूत्र मे औरइसके शावर भाष्य मे सम्बन्ध मात्र को ही नित्य कहा है यह नही मानना चाहिये। क्योकि दोनो सम्बन्धी पदार्थो के नित्य हुए बिना उनका सम्बन्ध मात्र नित्य नही हो सकता। इससे दोनो सम्बन्धियों का भी नित्यत्व सिद्ध होता है यही समीचीन मार्ग है ॥१२॥

बबर इत्यादि वाक्यो से भी अनित्यत्व सिद्ध नही कर सकते । बबर नामक कोई जन्म मरणवाला मनुष्य यहा विवक्षित नही है जिससे वेदको अनित्य कहा जावे। यहाँ तो केवल शब्द सामान्य कहा है। अथवा प्रवहणशील वायुका भी बबर शब्दसे ग्रहण हो सकता है इसी आशय को 'आख्या प्रवचनात्' और'परन्तु०' इन दो सूत्रो से जैमिनि ने कहा है और इसी अर्थका भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य चरणोने देवताधिकरण के आनन्द भाष्य मे प्रतिपादन किया है कि 'गत कल्पके आनुपूर्वीवाले वेद को इस कल्पकी सृष्टि मे भी स्मरण करके भगवान् उपदेश करते है । अत अपौरुषेयत्व भी सुरक्षित रहा' इत्यादि रूपसे वहा लिखा है। इससे भी अधिक विस्तार से यह विषय स्वरचित वेदार्थरक्षा मे प्रति पादित किया हूँ इस लिये विशेष जिज्ञासुओ को वहाँ पर ही देखना चाहिये । यहा तो केवल दिग्दर्शन मात्र है ॥१३॥

इस प्रकार वेद को सव आचार्यो के अपौरुषेय मानने पर भी जो मनुष्य अपनी दुर्भावना वशात् पौरुषेय कहते है वह साम्प्रदायिक रहस्य से अनभिज्ञ है अत सम्प्रदाय प्रेमियो को

एवेति साम्प्रदायिकैर्दूरतः परिहर्तव्य इत्युपरम्यते प्रासङ्गिकविवेचनात् ॥१४॥

अथाधुना दशविधकल्पविभक्तस्य वैदिकपदवाच्यस्यादिमे कल्पेऽस्य श्रीराम-मंत्रस्य सामञ्जस्यमुपपाद्यते। तथा हि—वेदानुकूलं यत्प्रमाणजातं तत्प्रतिपाद्यत्वमेव प्रथमं वैदिकत्वम्। तच्च श्रीराममनोर्वेदाविरोधिस्मृतीतिहासपुराणसदाचारादिभिः सम्यक् प्रतिपाद्यमानत्वादक्षतम्। वेदानुकूलस्मृतीनाञ्च प्रामाण्यं शास्त्रकारैर्व्यवस्था-पितमेव अत एव 'अष्टकाः कर्तव्या' इति स्मृतिप्रतिपादितधर्मस्यानुष्ठानं वैदिकैः क्रियते। तथा च जैमिनीयसूत्रम् 'अपि वा कर्तृसामान्यात्प्रमाणमनुमानं स्यात्' इति। नहि वयं स्वातन्त्र्येण स्मृतेः प्रामाण्यमभ्युपगच्छामो येन भ्रान्तिप्रमादादिषुदोषदूषित-त्वेन विचिकित्सितमेव प्रामाण्यं स्यात्। वयन्त्वधिगतवेदार्थानां मन्वगस्त्यहारीतप-राशरादिमहर्षीणां स्मरणमेव भ्रान्त्यादिदोषापेत ब्रूमः। नतु चैत्यवन्दनादिविधाय-कानां वेदार्थबोधशून्यानां सौगतशाक्योलूक्यादीनां भ्रान्तिमत्स्मरणम् ॥१५॥

इदन्तु युक्तम्। सहस्रं सामशाखा, एकशतमध्वर्युशाखा, एकविंशतिशाखं बाह्वृच्यमिति शाखाप्रमाणस्य वैदिकपरम्पर्येण स्मरणान्न शाखाधिक्यं शक्यमुत्क-ल्पयितुं मन्त्राणान्तु केषाञ्चिदुच्छिन्नध्येतृपारम्पर्य्यादुत्सादनमेकत्र सतामपि शाखा-

उन्हे दूर से ही त्याग देना चाहिये। अब इस प्रासगिक विवेचन से उपरत होकर प्रकृत को ही अनुसरण किया जाता है।१४।

पूर्व मे जो दश प्रकार से वैदिक पदका अर्थ किया गया है उनमे से प्रथम कल्प मे श्री राममन्त्र का समंजस कहा जाता है। प्रथम कल्प मे वैदिकत्व है वेदानुकूल जितने भी प्रमाण हैं उनसे श्रीराम मन्त्र का प्रतिपाद्यत्व होना। वेदके अविरुद्ध स्मृति, इतिहास, पुराण, और सदा चार आदि सब मे श्रीराममन्त्र का वर्णन किया गया है इसलिये प्रथम प्रकार से वैदिकता श्री राममन्त्र मे भली प्रकार से है। वेदानुसारिणी स्मृतियों का प्रामाण्य शास्त्रकारो ने स्थापित किया ही है। अतएव 'अष्टका' आदि स्मृति प्रतिपादित धर्मका पालन समस्त वैदिक करते है। इसीका समर्थन 'अपि वा' इस सूत्रसे जैमिनि ने किया है। हम वेद को छोडकर स्वतन्त्र रूपसे स्मृति को प्रमाण नही मानते जिससे कि मनुष्य स्वभाव मे सरल भ्रान्ति और प्रमाद आदि दोष आ जाने के कारण स्मृतियों के प्रमाण मे संदेह हो जावे। किन्तु हमतो वेदार्थ के पूर्ण ज्ञाता त्रैका-लिक ज्ञानवान् मनु, अगस्त्य, हारीत, पराशर आदि महर्षियो की स्मृतियों की ही भ्रान्ति आदि दोषों से रहित कहते है। चैत्यवन्दनादि विधान करनेवाली और वेदार्थ बोधसे हीन सुगत, शाक्य और उलूक आदि से प्रणीत स्मृतियों को निर्दुष्ट नही मानते ॥१५॥

यहा पर यह अवश्य विचार करने योग्य है। सामवेद की एक सहस्र शाखा है। यजुर्वेद मे एक शत और एक शाखा है और ऋग्वेद इक्कीश शाखा वाला है इस प्रकार वैदिक ब्राह्मण परम्परा से यह बात स्मरण होती चली आयी है अत शाखाओं मे आधिक्य नही कहा जा सकता। मन्त्रों मे अध्ययन परम्परा के भ्रष्ट होने के कारण एक शाखा मे पाठ होते हुए भी

न्तरेऽधिगतत्वञ्च शक्यते वक्तु। नत्वङ्गवाक्योत्सादनमन्यथा तदङ्गवैकल्यस्य संशयाधायकतया न स्यात्साध्यवसाया प्रवृत्तिः कस्मिन्नपिकर्मणि कर्मठानाम्। पश्यामश्चाहर्दिवं वैदिकाना सम्प्रतिपन्नां प्रवृत्तिमिति नाङ्गवाक्योत्सादनमाम्नायस्य ॥१६॥

तथा च वेदाविरोधिस्मार्तैर्वचोभिः केचिदेव मन्त्राः शक्यन्तेऽनुमातुमिति तादृशं वेदानुकूलं यत्किमपि स्मृतिसदाचारादिकं तत्सर्वमत्र प्रमाणम्। प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धन्तु स्मार्त्तवचन त्यज्यत एव। तथा च सूत्रम् "विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्" इति ॥१७॥

प्रकृते च वेदानुकूलास्वेव हारीतादिस्मृतिषु श्रीराममन्त्रस्य दण्डग्राहिकयास्त्येव विद्यमानत्वमिति।

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रह्म गद्यते। सर्वै श्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥६।२४०॥
तस्माद्रामिति वै वीजमाद्यं तस्य मनोः स्मृतम्। शक्तिः श्रीरुच्यते राजन्! सर्वाभीष्टफलप्रदा॥
श्रियो मनोरमो योऽसौ स राम इति विश्रुतः।
चतुर्थ्या नमसश्चैव सोऽर्थःपूर्ववदेवहि ॥६।२५२॥

इति वृद्धहारीते स्पष्टमस्यमनोरुक्तिरुपलभ्यत इति। वाल्मीकि संहितायामपि। एवं महात्म्यसंयुक्तो राममंत्रो विशेषतः। मोक्षप्रदो महामंत्रो मन्त्रराजः प्रशस्यत।इति। एवं पुराणादिष्वपि श्रीराममंत्रस्य वर्णनमसकृदुपलभ्यते १८।

वहा न पढ कर शाखान्तर मे उसका अध्ययन कह सकने है। परन्तु अग वाक्य का विनाश नहीं कह सकते। क्योकि किसी अगके न होने के कारण वैदिक ब्राह्मणो की किसी भी कर्म मे नि सन्देह प्रवृत्ति ही न होगी। और हम वैदिक महानुभावो को निरन्तर देखते है कि वह निश्चित रूप से स्वकीय कर्मो मे प्रवृत्ति परायण है। अत अग वाक्यो का उड जाना तो वेद मे है नही ॥१६॥

वेद से अविरुद्ध स्मृति वचनो से कुछ ही अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार का वेदानुकूलत्व स्मृति और सदाचार आदि मे है। अत वह सब इस राममन्त्र मे प्रमाण हो सकते है परन्तु प्रत्यक्ष श्रुतिके विरुद्ध यदि स्मार्त वचन हो तो उसका त्याग ही किया जाता है। इसमे प्रमाण रूप जैमिनि ऋषिका 'विरोधे' इत्यादि सूत्र ही है ॥१७॥

श्रीराममन्त्र के विषय मे वेदानुकूल हारीतादि स्मृतिया प्रमाण है इन स्मृतियो मे स्पष्ट रूपसे श्रीराममन्त्र विद्यमान है। "दाशरथी भगवान् का जो षडक्षर मन्त्र है वह तारक ब्रह्म कहा जाता है वह मनुष्यो को सब ऐश्वर्य और सब इच्छित फलो का देने वाला है। उस मन्त्र का 'रा' यह बीज है और सब अभीष्ट फलो को देने वाली श्रीशक्ति है। श्रीराम जिसमे रमा हो वह 'राम' पदसे कहा जाता है। चतुर्थ्यन्त और नमस् पदसे यही पूर्वोक्त अर्थ कहा जाता है"। इस प्रकार बृद्ध हारीत मे श्री राममन्त्र स्पष्ट रूप से कहा गया है। वाल्मीकि सहिता मे भी क्त्युक्त 'एवं माहात्म्य' इत्यादि श्लोक से श्रीराममन्त्र और उसका महत्व प्रतिपादन किया है। इसी

शिष्टाचारस्यापि 'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः' इत्यभिहितस्याविच्छिन्नसम्प्रदाय-पारम्पर्येण सम्प्राप्तस्य शिष्टाकोपाधिकरणेप्रामाण्यमुपपादितम्। न च केषांचित् सदाचाराणां वेदेऽनुपलभ्यमानत्वात्स्मृतिष्वप्यदर्शनात् कथं वैदिकत्वमिति वाच्यम् अवछिन्नवैदिकसत्सम्प्रदायनिष्ठैर्धर्मबुद्धयानुष्ठितस्य सामान्याकारेण स्मृत्यादिषूपदिष्टस्यानुपदिष्टस्य वा वेदाविरोधिस्मार्तधर्मवदेववेदमूलत्वेन सम्भवत्येव प्रामाण्यम् १९॥

आह च भगवान् वसिष्ठः "श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः तदलाभे शिष्टाचारःप्रमाणम्" (अ० १।३।४) तथैवापस्तम्बोऽपि "धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च" इत्याह। मनुरपि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैवसाधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च" इति स्पष्ठमभिदधौ ॥

शिष्टाश्चात्र-धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।

ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः। इत्यादिलक्षणलक्षिता ज्ञेयाः ।२०॥

अयमभिसन्धिः धर्मेखिलस्ऽय वेदस्य तदविरुद्धानाञ्च स्मृतीनाम्प्रामाण्यम्। रागद्वेषाद्यसंश्लिष्टस्याप्तस्य शीलमाचारश्चापि प्रमाणम्। विकल्पविहितेषु पदार्थेषु-यदनुष्ठानेनात्मनस्तुष्टिर्भवेत्तस्यैवानुष्ठानम्। इयमेवात्मतुष्टिर्धर्मे प्रमाणम्। नतु

प्रकार पुराण मे भी श्रीराममन्त्र का बारम्बार वर्णन मिलता है। (इसको पुराण के प्रकरण मे कहेंगे) ॥१८॥

अब रहा सदाचार। सो वह भी अविच्छिन्न सम्प्रदाय परम्परा होने के कारण पूर्ण रीति से प्रमाण है यह बात पूर्वमीमासा के शिष्टाकोपाधिकरण मे प्रतिपादित है। यहाँ कोई शंका उठाते है कि "कई ऐसी भी सदाचार है जिनका वेद और स्मृति मे प्रमाण नही मिलता और लोक मे प्रचलित है उनको वैदिक कैसे माना जा सकता है" उत्तर देते है कि जिन आप्त पुरुषों की वैदिक परम्परा नष्ट नही हुई है ऐसे पुरुषोसे धर्म बुद्धि से पालन किये गये धर्म का स्मृतियो मे सामान्य रूपसे कथन होने पर भी, श्रुति के अविरुद्ध होने के कारण वह वेद मूल ही कहा जायेगा और उसको सर्वथा प्रमाण कहा जा सकता है ॥१९॥

इसी आशय को भगवान् वसिष्ठजी ने अपनी स्मृति मे कहा है। 'श्रुति और स्मृति मे जिसका विधान हो वह धर्म है। उसके अभाव मे शिष्ट पुरुषो का सदाचार भी प्रमाण है।' (१।३।४) इसी प्रकार आपस्तम्बने भी कहा है कि धर्मज्ञों का सदाचार प्रमाण है और वेद भी प्रमाण है।' मनुस्मृति मे भी 'समस्त वेद धर्ममे प्रमाण है वेदवित् पुरुषोकी स्मृति और शील भी प्रमाण है एवं साधु पुरुषो का सदाचार और आत्म तुष्टि यह सब भी प्रमाण है' इस प्रकार कहा गया है। परिबृंगह के साथ जिन्होने वेद पढा है श्रुति वाक्य और उसके अर्थको जो यथार्थ रूपसे जानते है वही ब्राह्मण शिष्ट कहे जाते है ॥२०॥

तात्पर्य यह है कि धर्म मे अखिल वेद और वेद से अविरुद्ध स्मृतियाँ प्रमाण है। एवं राग द्वेष से रहित आप्त पुरुषो का शील और आचार भी प्रमाण है। विकल्प करके जो पदार्थ विधान किये गये है उनमे जिसके अनुष्ठान से अनुष्ठाता के मन को संतोष हो वह भी धर्म

स्वस्यात्मनः प्रियं यत्किमपि । एतेन 'स्वस्यात्मनो यत्प्रियंस्वैरविहरणादिकं तदेवानुष्ठेयं स एव च धर्म' इति वदन्तोऽतिक्रान्तसम्प्रदायमर्यादा स्वच्छन्दचारिण उच्छृंखला निराकृता वेदितव्याः । वैकल्पिकेषु पदार्थेष्वेवात्मनः प्रियस्यानुष्ठेयत्वस्यैव शास्त्रकृत्सम्मतत्वात् ॥२१॥

एवञ्च भगवच्छ्रीरामप्रवर्तितत्वात्परमेष्ठिवसिष्ठपराशरद्वैपायनादिभिराप्ततमैर्महाजनैः स्वसदाचारपरिपाट्या परिगृहीतत्वात्तदविच्छिन्नपारम्पर्येण प्रथितस्यास्य श्रीराममनोर्वेदानुकूलसदाचारात्मकप्रमाणवेद्यत्वेन संगच्छते एवादिमं वैदिकत्वमिति ॥२२॥

अथ द्वितीयतल्लक्षणपक्षमुद्भावयामः । स च वेदोपबृंहणेतिहासपुराणैः प्रतिपाद्यत्वं वैदिकत्वमित्येतल्लक्षणः । अस्मिन्नपि कल्पे निर्विकल्पमुपपन्नमस्य मनोर्वैदिकत्वम् ॥२३॥ तथाहि

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।

इति बार्हस्पत्यवचनादितिहासपुराणयोर्वेदोपबृंहकत्व- मवगम्यते । उपबृंहणं तावत् "अतिसंक्षिप्तस्याम्नायार्थस्य तदविरोधिमद्वचोभिर्विशदीकरणम् । प्रतारकत्वञ्चात्र स्वानवबोधप्रयोज्यानर्थोत्पादकत्वम् । न ह्यनधीतमीमांसो ऽनवलोकितेतिहासपुराणादितन्त्रः शक्नोति दुरूहं वेदार्थमवगन्तुम् । तदुक्तं श्लोकवार्तिके—

मे प्रमाण है । आत्म तुष्टिका यह अर्थ नही है कि 'कर्ता को जो कुछ भी प्रिय हो उसको ही कर चले और यही आत्मतुष्टि होती हुई धर्म मे प्रमाण भूत मानी जावे ।' इससे 'स्वस्य च प्रियमात्मन' इसका स्वच्छन्द मनोनुकूलविहरण भी धर्म है ऐसे तात्पर्य को निकालने वाले उच्छृङ्खल मनुष्यो के मत का खण्डन हो जाता है । क्योकि उपर्युक्त तात्पर्य ही साधु सम्मत है ॥२१॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से प्रवर्त्तित और ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यासादि परम आप्त महामुनियों के सदाचारसे सम्प्राप्त एव उनकी अविच्छिन्न परम्परा मे अखण्ड रूप से चले आते हुए इस श्रीराम मन्त्र मे प्रथम लक्षण के अनुसार वैदिकत्व सुतरा उपपन्न हुआ ॥२२॥

अव वैदिकपद के द्वितीय लक्षण की सगति की जाती है । वह है वेद के (उपबृंहक) तात्पर्य को बढाने वाले इतिहास और पुराणो से प्रतिपादित होना । इस (दूसरे) कल्प मे भी श्रीराममन्त्र का वैदिकत्व निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है ॥२३॥

अब इसका विवेचन किया जाता है । "इतिहास और पुराणो से वेद का उपबृंहण करना चाहिये । क्योकि अल्प श्रुत से वेद भय मानता है कि यह मेरा प्रतारण करेगा अर्थात् मेरे अर्थ का अनर्थ कर देगा" इस बृहस्पति के वचन से इतिहास और पुराणो को वेदोपबृंहक माना गया है । अत्यन्त सक्षिप्त वेद वचनो को उनके अविरोधी वचनो से विशद करने को उपबृंहण कहा जाता है । व्याख्याता के अज्ञान के कारण अर्थका अनर्थ कर देना इसको प्रतारण कहा जाता है।

यथा धर्मावबोधस्य प्रमाणं वैदिकं वचः । तदर्थनिर्णये हेतुर्जैमिनीयं तथैव नः ।
स्थिते वेदप्रमाणत्वे पुनर्वाक्यार्थनिर्णये । मतिर्बहुविदां पुंसां संशयान्नोपजायते ।
केचिदाहुरसावर्थः केचिन्नासावयं त्विति । तन्निर्णयार्थमप्येतत्परं शास्त्रं प्रणीयते ।इति।
एवञ्च यथावेदार्थनिर्णीतौ मीमांसायाः प्राधान्यं तथेवेतिहासपुराणयोरपि तदुपबृंहणत्व शास्त्रकृद्भिरुपपादितम् ।।२४।।

तथा चेतिहासपुराणयोर्वेदोपबृंहणत्वे सिद्धे तदभिधायित्वमपि वेदिकत्वं शक्कत एव वक्तुम् । श्रीरामषडक्षरमंत्रस्य च नारदीयादिपुराणेषु स्पष्टतया प्रतिपाद्यत्वमुपलभ्यते ।।२५।। तथाहि–

अथ रामस्य मनवो वक्ष्यन्ते सिद्धिदायकाः ।
येषामाराधनान्मर्त्यास्तरन्ति भवसागरम् ।। बृं.ना पु.पू.ख.७३अ.१श्लो
वैष्णवेष्वपि मंत्रेषु राममंत्रः फलाधिकः ।
गाणपत्यादिमन्त्रेभ्यः कोटिकोटि गुणाधिकः ।। ।।ना.पु.७३।३
विष्णुशय्यास्थितो वह्निरिन्दुभूषितमस्तकः ।
रामाय हृदयान्तोयं महाघौघविनाशनः । ना.पु.७३।४।

जिसने पूर्व मीमासा और उत्तर मीमामा यह दोनो नही पढी और इतिहास पुराण तथा तन्त्र शास्त्रो का परिशीलन नही किया वह अति गहन वेदार्थ को नही जान सकता। श्लोकवार्तिक मे कुमारिलभट्ट कहते है कि 'धर्म के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान कराने मे वेद वाक्य ही प्रमाण है।' वेद वाक्य के अर्थ का निर्णय करने के लिये जैमिनि महर्षि का दर्शन (पूर्व मीमासा) हमारे लिये प्रमाण है। वेद प्रामाण्य का निश्चय हो जाने पर भी वाक्यार्थ निर्णय करने के लिये बहुश्रुत मनुष्यो की बुद्धि भी संशय मे पडकर प्रतिहत हो जाती है। कोई कहते है यह अर्थ है और कोई कहते है यह नही किन्तु यह अर्थ है। इस विकल्प के निर्णय के लिये भी इस मीमासा शास्त्र का प्रणयन किया जाता है। तात्पर्य यह है कि वेदार्थ निर्णय के लिये जिस प्रकार मीमासा शास्त्र की प्रधानतया आवश्यकता है इसी प्रकार इतिहास और पुराणों को भी शास्त्रकारो ने वेदार्थ के विस्तार करने के लिये परमोपयोगी माना है ।।२४।।

इतिहास और पुराणको इस प्रकार उप बृंहण सिद्ध हो जाने पर इतिहास और पुराणों मे जिसका वर्णन आता हो उस को भी वैदिक कह सकते है। श्रीराम मत्र का नारदीय आदि पुराणों मे स्पस्ट रूपसे वर्णन मिलता है, इसका नीचे के प्रवट्टक से विवेचन किया जाता है ।।२५।।

'अब श्रीरामजीके मत्रोका वर्णन किया जाता है जो शीघ्र ही सिद्धि देने वाले है और जिनके आराधनसे मनुष्य भवसागर को तर सकता है कि नारद पुराणके वचन है यह श्रीराम मंत्र गाणपत्यादि मंत्रो की अपेक्षा कोटि कोटि गुण अधिक फल देने वाला है और समस्त वैष्णव मत्रो मे भी सबसे अधिक फल वाला है। विष्णुशय्यास्थित वह्निबीज अर्थात् 'रा', और चन्द्रबीज अर्थात् अनुस्वार वर्तुल होनेको समता से मस्तक अर्थात् ऊर्ध्व भाग (लिपित) जिसका भूषित है 'रा' यह आमिद वर्ण तथा हृदयान्त रामाय पद अर्थात् रामाय नम इस प्रकार अन्तिम आनुपूर्वी युक्त यह मंत्रराज सब पाप राशि को नाश करने वाला है।

सर्वेषु राममंत्रेषु ह्यतिश्रेष्ठः षडक्षरः ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।ना.पु.७३।५।
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पयुतानि च ।
कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यानि वै ।।ना.पु.७३।६
मंत्रस्योच्चारणात्सद्यो लयं यन्ति न संशयः ।
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गात्री छन्दो रामश्च देवता ।।७३।७।।
षट् कोणेषु षडर्णानि मंत्रस्य विलिखेद्बुधः ।
अष्टपत्रे तथाष्टार्णां लिखेत्प्रणवगर्भिता ।।७३।३३।
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः ।
ब्रह्मासंमोहनः शक्तिर्दक्षिणामूर्तिसंज्ञकः ।।७३।५६।
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्तास्ते तेषां मुनयः क्रमात् ।
अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रो मुनिः स्मृतः ।।७३।५४।।
छन्दः प्रोक्तं च गायत्री श्रीरामो देवता पुनः
बीजशक्तिराधमान्त्यं मंत्रार्णैः स्यात्षडंगकम् ।।७३।।५४।।

इत्याद्यनेकपौराणिकवचनैर्विशदतया प्रतिपादितत्वाद्द्वितीयवैदिकत्वमपि श्रीराममनावुपपन्नतरम् ।।२६।।

अथ तृतीयकल्पाभिहितवेदिकत्वं वेदानुकूलकृतिसाध्यत्वरूपम् । वैदिकवाक्यानां स्वार्थानुष्ठानेऽर्थिसमर्थजनप्रवर्त्तकत्वात्तदनुष्ठानायास्थीयमानो योऽयं यत्नस्तद्वताऽस्यम-

श्रीरामजी के भी सब मत्रों मे यह षडक्षर मंत्र श्रेष्ठ है । यह मत्रराज जान अजान मे किये गये ब्रह्महत्या, स्वर्णस्तेय, सुरापान, और गुरुस्त्री गमन आदि महापापो को और गोवधादि उप पापो को उच्चारण मात्र से शीघ्र ही नाश करता है इसमे सदेह नही है । इस श्रीराम मत्र के ब्रह्मा मुनि है, गायत्री छन्द है और श्रीराम देवता है । छ कोनो मे छ अक्षर लिखे । और अष्ट पत्र मे प्रकार युक्त आठ अक्षरों को लिखे ।

षडक्षर मत्र छ प्रकार का है और धर्म, अर्थ काम मोक्ष, इन चारों पदार्थो को देने वाला है । इस षडक्षर मंत्र के छ अक्षरो के अनुक्रम से ब्रह्मा, समोहन, शक्ति, दक्षिणामूर्त्ति, अगस्त्य, और श्री शिव ये मुनि कहे गये है । इस मंत्र का गायत्री छन्द है । श्रीराम चन्द्रजी देवता है। बीज शक्ति है । आदि के और अन्तके वर्णो के मिलाने पर जो शब्द होगा वह एतन्मंत्रप्रतिपाद्य प्रधान देव माने जाते है । इस प्रकार मंत्र वर्णो से छ अग वाला है ।

इत्यादि अनेक पौराणिक वचनो से इस मत्रराज का विशद रूपसे प्रतिपादन किया गया है । अत द्वितीय वैदिकत्व भी श्रीराम मंत्रमे सुतरा उपपन्न हुआ ।।२६।।

अब तृतीय कल्प से कथित वैदित्वका विवेचन किया जाता है। वह है वेदानुकूल जो यत्न उस यत्न से साधित किया जाना । इसी अर्थ को ग्रन्थकार स्वयं विशद करते हैं । वैदिक

नोरप्यनुष्ठेयत्वं सम्भवतीत्येतदर्थकम् । नहीयं राजाज्ञास्ति यदाम्नायमात्रानुमोदित-दर्शपौर्णमासादिश्रौतयागानुष्ठातृभिर्न किञ्चिदन्यत्कर्मानुष्ठेयमिति । किन्तु परमपुरुषार्थेप्सुभि र्वेदानुशासनवशवर्तिभिश्च वैदिकं शास्त्रीयं लौकिकं चेति त्रिविधमप्याचारपूतकर्मावश्यमनुष्ठेयम् । अत एव "श्रुतिरमृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधंप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् ॥" इति मानवं वचः-संगच्छते ॥२७॥

अत एव वृद्धैः "प्रवृत्तिसंज्ञके धर्मे फलमभ्युदयो मतः ।
निवृत्तिसंज्ञके धर्मे फलं निश्रेयसंमतम् ॥" इतिनिर्णीतम् ।

तथाच श्रुतिः 'धर्मेण पापमपनुदति" एवञ्च नित्यसुखैषिभिर्वेदाद्धर्मपक्षमन्विष्य तदनुष्ठानपूर्वकमन्यदपि वेदाविरोधिनिःश्रेयसातिशयाधायिकर्मशास्त्रीयंलौकिकं वापि भवेन्नजातुचिद्धेयमिति शास्त्रीयः पन्थाः ॥२८॥

वैदिककर्ममार्गमुत्सृज्यापि लोकोपकृतयेऽन्यदनुष्ठानमितितुमद्भिगर्हितम् । तथानुष्ठातुः प्रत्यवायसंभवात् । एतदेवोक्तं गीताचार्यैः

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ इति

वाक्य अपने अर्थ के पालन कराने के लिये अर्थी तथा योग्यता वाले पुरुषकी आकांक्षा रखते हैं। इस लिये वेदार्थो के अनुष्ठान के लिये जो यत्न किया जायगा इस यत्न वाले अधिकारी पुरुष द्वारा इस मन्त्रका भी अनुष्ठान अच्छी प्रकारसे हो सकता है । यही तृतीय वैदिकत्व का तात्पर्यार्थ है। यह कोई राजाज्ञा नहीं है कि वैदिक दर्श पौर्णमासादि श्रौत यागो का कनुष्ठाता अन्य किसी कर्म का अनुष्ठान ही न करे । उचित तो यह है कि परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की इन्छा वाले शिष्ट जनो को वेद की आज्ञा के वशवर्ती हो कर वैदिक शास्त्रीय और लौकिक इस प्रकार त्रिविध सदा चार से पवित्र कर्म अवश्य पालन करने चाहिये । इसी लिये श्रुति, स्मृति, सदाचार, और स्वात्मप्रिय यह चार प्रकार का धर्म ऋषियोने माना है यह मनु वाक्य भी सगत हुआ ॥२७॥

इसीलिये वृद्धो ने कहा है कि "प्रवृत्ति धर्म का फल अभ्युदय है अर्थात् ऐहिक सुख और स्वर्ग सुख है। और निवृत्ति सज्ञक धर्म का फल मोक्ष है ।" 'धर्म से पाप नष्ट होता है, यह श्रुतिभी कहती है । इसलिये मोक्ष सुख की इच्छा वाले पुरुषो को चाहिये कि वेद से धर्म के स्वरूपको जानकर उसका यथार्थ रूप से अनुष्ठान करते हुए अन्य जो वेद का अविरुद्ध और मोक्ष को देने वाला शास्त्रीय अथवा लौकिक किसी भी प्रकार का कर्म हो उसे भी पालन करना चाहिये, छोडना कभी न चाहिये यह शास्त्रो का सिद्धान्त है ॥२८ ॥

वैदिक कर्म मार्ग को छोड कर लोक मनोरजन के लिये अन्य कार्य करना यह साधुजनो से निन्दित मार्ग है, ऐसे कर्म कर्ताको प्रत्यवाय होता है । यही बात श्रीभगवान ने गीता शास्त्र मे कही है कि 'जो मनुष्य शास्त्र विधि को छोडकर अपनी स्वेच्छाचारिता से वर्त्तता है वह सिद्धि को नहीं प्राप्त होता और न स्वर्गादि सुख अथवा परगति मोक्ष को ही प्राप्त होता है' इसी प्रकार

यमोऽप्याह—वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम् ।
यस्य प्रमाणं न भवेत्प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणम् ॥इति॥२९॥

अयमभिसन्धिः । श्रौतं स्मार्तञ्च धर्ममनुतिष्ठद्भिः कालक्रमात्कुलगतोऽपि धर्मोऽनुष्ठेय एव सदाचारस्यापि प्रमाणकोटौ निविष्टत्वात् तदाह भगवान् सुमन्तुः—
यत्रशास्त्रगतिर्भिन्ना सर्वकर्मसु भारत । उदितेऽनुदिते चैव होमे भेदो यथा भवेत् ॥
तस्मात्कुलक्रमायातमाचारं ह्याचरेद्बुधः ।
स गरीयान् महाबाहो! धर्मशास्त्रोदितादपि ॥इति॥३०॥

स्वसम्प्रदायसिद्धस्यापि धर्मस्यानुष्ठानं सर्वसम्मतम् । एवञ्च सुखविशेषलिप्सयैवार्थिनामाम्नायिकेषु प्रवृत्तिरुपपद्यते । यदि ततोऽप्यधिकसुखलिप्सा चेन्निष्कामकर्मणामप्यनुष्ठानं कार्यमेव । यतः चरमपुरुषार्थस्य मोक्षस्य तदनुष्ठानप्राप्यत्वात् ।३१॥

नच कामस्यैव निस्सीमसुखस्वरूपत्वेन चरमपुरुषार्थत्वम् । तथा चारण्यके पर्वणि—

अर्थार्थी पुरुषो राजन् ! बृहन्तं धर्ममिच्छति ।
अर्थमिच्छन्ति कामार्थं न कामादन्यमिच्छति ।

यम स्मृति मे भी लिखा है कि हमारे मतमे वेद प्रमाण है स्मृतिया भी प्रमाण है एव धर्मार्थ युक्त वचन भी प्रमाण है। जिसके मत मे उपर्युक्त तीनो प्रमाण प्रमाण नही उसके वचनको कौन प्रमाण करेगा । अर्थात् पूर्वोक्त तीनो प्रमाणो को न मानने वाले के वचन को कभी नही मानना चाहिये ॥ २९ ॥

अभिप्राय यह है कि, श्रौत और स्मार्त कर्म को पालन करने वालो को अनन्त काल से कुलागत धर्म का भी पालन करना चाहिये । क्योंकि सदाचार भी प्रमाण कोटि मे माना जाता है इसको सुमन्तु महर्षि ने इस प्रकार कहा है 'जिन कर्मोकि पालन मे शास्त्रकी गति विभिन्न प्रकार से उपलब्ध होती हो जैसे 'उदिते जुहोति' 'अनुदिते जुहोति' इन दो वचनो से उदित होम और अनुदित होम इन दोनोंका ही विधान पाया जाता है, एव वाक्यान्तरमे दोनो की निन्दा भी श्रुत है । इस अवस्था मे कुल परम्परासे प्राप्त आचारके अनुसारही विद्वानको व्यवहार करना चाहिये । हे महाबाहो ! वह कुलाचार धर्मशास्त्र के कथनसे भी श्रेष्ठ माना जाता है' ॥ ३० ॥

इस प्रकार अपनेअपने संप्रदाय मे प्रसिद्ध जो धर्म हो उसका अनुष्ठान भी सर्व सम्मत है । इस से यह निष्पन्न हुआ कि सुख विशेषकी लिप्सा से ही तदर्थी मनुष्यों की वैदिक कर्मो मे प्रवृत्ति देखी जाती है । परन्तु उस सुख विशेषसे भी अधिक सुखकी इच्छा हो तो निष्काम भगवदर्चन वन्दन मन्त्र जपादि रूप कर्मोको भी अवश्य अनुष्ठान करना ही चाहिये ।क्योंकि उन निष्काम कर्मो से अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥

कोई कहते है कि, काम ही नि सीम सुखरूप होने के कारण अन्तिम पुरुषार्थ है । अतएव भारत के आरण्यक पर्व मे यह कहा हुआ है कि "हे राजन् ! प्रत्येक मनुष्य अर्थ की

नहि कामेन कामोन्यः साध्यते फलमेव तत् ।
इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च ॥

इति शास्त्रनिश्चयादितिवाच्यम् । कामस्य सुखस्वरूपत्वेऽपि दुःखानुलिप्तत्वेन निरतिशयसुखस्वरूपत्वाभावात् ॥३२॥

अत एवावाप्तसमस्तशास्त्रतत्वामहामहिमशालिनो ब्रह्मवसिष्ठपराशरव्यासादिमुनयस्तस्य निरतिशयसुखस्वरूपत्वमपाकृत्य मुहुरनिन्दयन् तदेवाह—

कामिनो वर्णयन् कामं लोभं मुग्धस्य वर्णयन् ।
नरः किंफलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातनम् ॥

न चैवं संसाराब्धिनिमग्नजनसमुद्धर्तुकामोऽखिलशास्त्रपारावारपारदृश्वा पाराशर्यः कथमर्थकामौ सुखत्वेनावर्णयत् ॥ ३३ ॥

इति चेदित्थम् । धर्ममोक्षयोर्निरतिशयसुखरूपत्वविधित्सया लोकानुग्रहपरोऽपि मुनिस्तौ दृष्टान्तीकृत्य धर्ममोक्षयोः पुरुषार्थपरमपुरुषार्थत्वे प्रत्यपीपदत् । यतः केचिद्दूरदर्शिनो वैदिककर्मणिश्रद्धाजडा सुखैकमात्रलिप्सवः कामक्लेशमप्यमहिष्णवो धर्मापवर्गयोर्वैदिकानुष्ठाने मन्दं प्रवर्तेरन् ।

प्राप्ति के लिये अधिक धर्मकी इच्छा रखता है और उस अर्थको काम प्राप्ति के लिये साधन मानता है। परन्तु कामसे अन्य किसी फलकी इच्छा नही रखता कामरूपपुरुषार्थ से दूसरे किसी कामकी साधना नही होती क्योकि पाच इन्द्रियोंका मन का और हृदयका एक कामही फल है" इत्यादि वचनोंको प्रमाणतया कहते है। यह उनका कथन ठीक नही है। क्योंकि काम को सुखरूप होने पर भी दु खोंमिश्रित होनेके कारण निरतिशय सुखरूपता नही कही जा सकती ॥३२॥

इसलिए समस्त शास्त्रो के तत्व को जानने वाले महामहिमाशाली ब्रह्मा, वसिष्ट पराशर और व्यास आदि मुनियोंने उस कामरूप पुरुपार्थ को अन्तिम सुखरूपतासे खण्डन करके बारबार उनकी निंदा की है। यही पुराणान्तर मे भी कहा गया है। "कामी पुरुपके लिये कामका वर्णन और लोभी के लिये लोभका वर्णन करने वाला मनुष्य किस फलको प्राप्त करेगा ? यह एक प्रकारसे कुएंमे अन्धेको गिरानेके समान है"। यहा पर यह शंका होती है कि ससार समुद्रमे डूबेहुये जनसमूदाय के समुद्धार की इच्छा वाले एवं शास्त्र सागर के पार देखने वाले पराशर ऋषिके पुत्र श्री व्यास भगवान् अपने महाभारत मे किस लिये अर्थ और कामको सुख रूपसे वर्णन करते है ॥३३॥

इस शंकाका समाधान यह है कि धर्म और मोक्ष इन दोनों मे ही निरतिशय सुख रूपताके विधानकी इच्छासे लोकानुग्रह परायण होने के कारण मुनिने अर्थ और कामको दृष्टान्तभूत बनाकर धर्म और मोक्ष मे पुरुषार्थत्वका प्रतिपादन किया है। क्योंकि कुछ अदूरदर्शी मनुष्य वैदिक कर्मोमे मन्द श्रद्धा वाले होकर सुख मात्रकी इच्छा रखतेहुए शारीरिक क्लेश लेशकोभी नहीं सहन करते हुए धर्म और अपवर्गके लिए वैदिक अनुष्ठान मे प्रवृत्ति नही करेगे।

तात्पर्य यह है कि अर्थ और कामको इन्द्रिय गोचर होने के कारण उनके प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्ति करते हुए उन दोनों मे आपातत सुख देखकर भोगार्थ राग से अधिक बढजाने

अर्थकामयोश्चैन्द्रियकतया तयोरर्जने प्रवृत्तिं विधित्सवस्तत्र चापाततः सुखमुपलभ्योद्रिक्तरागास्तदधिकफलप्रेप्सया धर्मनिःश्रेयसयोरपि जागृयुरिति तन्निदर्शनमितिहासपुराणादिष्वकरोन्महर्षिः । तथा चोक्तम्—

मुनिनाऽपि च कामर्थौ ज्ञात्वा लोकमनोहरौ ।
निन्द्यावपिस्तु तावेनौ धर्ममोक्षविवक्षया ।
अन्यथा घोरसंसारे बन्धहेतू जनस्य तौ ।
वर्णयेत्स कथं धीमान् महाकारुणिको मुनिः ।
लोकचिन्तानुरागार्थं वर्णयित्वा च तेन तौ ।
इतिहासैर्विचित्रार्थैः पुनस्तत्रैव निन्दितौ ।इति ॥३४॥

एवमतिसंक्षेपात् त्रिवर्गेषु धर्मस्यैव प्राधान्यम् तस्यापि च निःश्रेयसाङ्गत्वमतश्चरमपुरुषार्थपदाभिधेयत्वं केवलं मोक्षस्यैवेति प्रासङ्गिकमुपपाद्येदानीं प्रकृतमनुसरामः । वैदिकाचारचतुरचरणचेतोभिरेव संजातस्वोपास्यदेवताभिनवानुरागवशात् देवतार्चन, वन्दन, मन्त्रजपादिकं परप्राप्तिप्रयोजकं शक्यत एवावश्यमनुष्ठातुम् । नह्यनयोर्मिथो निवर्त्यनिवर्तकभावोऽस्ति । येन वैदिकक्रियाकलापमनुतिष्ठति नेदमाश्रयमासादयेत् । तस्माच्छ्रौताचारनिरतेनापि साध्यमिदं मनोग्त्नमिति तृतीयमपि वैदिकत्वं भजतेऽत्र मनौ सामञ्जस्यम् ॥३५॥

पर उससेभी अधिक सुखकी इच्छासे धर्म और मोक्षरूप पुरुषार्थ मे भी जागृत हो जावें इस कारण से महर्षिने इतिहास और पुरणोमे पुरुषार्थ रूपसे अर्थ कामकाभी परिगणन किया है । यही विषय इन श्लोकोमे वर्णित है । भगवान् व्यासजीने काम और अर्थको लोक मनोहर जानकर विवेकी जनोकी दृष्टि मे निन्द्य होने पर भी धर्म और मोक्ष को पुरुषार्थ रूप से उपादेयत्व समझाने के लिये इन दोनो की भी प्रशसा की । नही तो महाकारुणिक व्यास मुनि स्वय बुद्धिमान होने पर उन दोनोको इस घोर संसारमे मनुष्य के बन्धनके हेतु होने के कारण क्यो वर्णन करते। परन्तु लोकानुग्रह परायण श्रीव्यास मुनि ने नाना रूप से अर्थ काम का वर्णन करके फिर से अनेक धार्मिक विचित्र आख्यानो द्वारा उनकी निन्दा कि है ॥ ३४ ॥

इस प्रकार धर्म अर्थ, काम इन तीनो मे धर्म को ही प्रधानता है । और उस धर्म को भी परम पुरुषार्थ मोक्षका अगत्व है इस लिए परम पुरुषार्थ केवल मोक्षही सिद्ध है, यह विषय अत्यन्त संक्षेप से यहा प्रसगत उपपादन करके अब पुन प्रकृतका अनुसरण किया जाता है । इस प्रकार वैदिक कर्मानुष्ठानमे सुकुशल पुरुषोसे अपने उपास्य देवतामे अधिक प्रेम होने के कारण स्वकीय इष्ट देवता का पूजन बन्दन और मन्त्रजप आदि जो परमेश्वर प्राप्ति के साधन है वह आवश्यक रूपसे किये जासकते है वैदिक क्रिया समूहका अनुष्ठान और भगवदाराधन मन्त्र जप इन दोनोका परस्पर वध्य घातक भाव नहा है जिससे वैदिक काम्य कर्मका अनुष्ठान करनेवाला यह निष्काम भगवत्पूजन मन्त्र जप आदिका अनुष्ठानही न कर सके । इसलिए श्रौत परिगणित कर्म

चतुर्थवैदिकत्वकल्पोऽयमनल्पफलशालिन्यखिलक्लेशकलिलोत्कालनचतुरेऽस्मिन् श्रीराममहामंत्रे संगतिमादधाति । तथाहि वेदोदितफलार्थिप्रवृत्तिविधेयत्वमित्यस्य वेदे श्रूयमाणानि भूत्यादिरूपाणि फलान्युद्दिश्य तदुपलब्धये तत्र सतृष्णस्य कामिनोऽधिकफलाजिघृक्षोः प्रवृत्तिविधेयतेत्यर्थः ॥३६॥

इदमत्र विचारास्पदम् । नित्यं, नैमित्तिकं, काम्यञ्चेति त्रिविधं कर्म वेदेषूपदिष्टम् । तत्र नित्यनैत्तिककर्मणोः प्रत्यवायपरिहार एव फलं, सिद्धान्ते भगवन्निग्रहलक्षण एव प्रत्यवायोऽभ्युपेयते । तत्रहि विधिप्रत्ययेन भगवन्निग्रहात्मकप्रत्यवायप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगिकर्तृव्यापारसाध्यत्वमेव बुबोधयिपितम् । अनिष्टनिवृत्तिरूपेष्टसाधनताज्ञानत्वमनुगतीकृत्योभयविधकर्मसाधारण्येनावश्यकर्तव्यताज्ञानप्रयोजकत्वमुभयत्राप्यक्षतम् ॥३७॥

एवञ्चोत्पन्ननिग्रहात्मकानिष्टनिवृत्तिप्रयोजकतां प्रायश्चित्तस्थलीयनैमित्तिकविधावधिगत्य सिध्यत्यत्राप्यवश्यकर्तव्यत्वम् । नन्वेवं जातेष्टयादिनैमित्तिकविधावव्याप्तिस्तत्र तत्कालावच्छेदेन भगवन्निग्रहस्यैवानुदयादिति चेन्न । नित्यस्थले प्रायश्चित्तनैमित्तिकजातेष्टयादिरूपनैमित्तिकस्थलयोश्च निग्रहाभावप्रयोजककृतिसाध्यत्वलक्षणावश्यकर्तव्यत्वमेव सर्वस्थलसाधारण्येन विध्यर्थः । तथा च—

परायण होने परभी अधिकारी पुरुष इस मन्त्र का भी जप ध्यान आदि करही सकता है । अत' तृतीय वैदिकत्व भी इस मन्त्र राजमे संगत हुआ ॥ ३५ ॥

चतुर्थ वैदिकत्व भी महाफलप्रद और अखिल क्लेश विनाश करनेमें समर्थ इस श्रीराम मन्त्र मे यथावत्सगत होता है । अब इसी का विवेचन किया जाता है । चतुर्थ कल्प का यह अर्थ है कि वेदमे श्रूयमाण जो भूति आदि फल है उनका उद्देश्य करके उनकी प्राप्ति के लिये उन फलों मे तृष्णा धारण करने वाले अर्थी पुरुष की अधिक फल की इच्छा से जो प्रवृत्ति हो उस को संपादन करना ॥ ३६ ॥

यहांपर यह विचारणीय है कि वेदमे नित्य नैमित्तिक और काम्य इस प्रकार त्रिविध कर्म कहे गये है । इनमे नित्य और नैमित्तिक कर्मका प्रत्यवाय परिहार ही फल है । क्योकि हमारे सिद्धान्त मे भगवान् का निग्रह रूपही प्रत्यवाय माना जाता है । नित्य नैमित्तिक स्थल मे विधि प्रत्यय से भगवन्निग्रह रूप जो प्रत्यवाय है वह प्रत्यवाय जिस कर्ताके व्यापारसे उत्पन्न न हो ऐसा कर्ताका व्यपारही साध्य रूपसे बोधित किया जाता है । ऊपर के दोनो स्थलोमे इष्टसाधनत्व ज्ञानको अनुगत करके अवश्य कर्तव्यत्व रूप ज्ञानका प्रयोजक विधि प्रत्यय है ॥ ३७ ॥

यहा पर इष्ट साधनता भी अनिष्ट निवृत्ति रूपही मानी गई है । इससे सम्पन्न यह हुआ कि नित्य नैमित्तिक कर्म न करनेके कारण उत्पन्न भगवन्निग्रह रूप अनिष्ट निवृत्तिको प्रयोजकता उभय स्थलमे मानकर अवश्य कर्तव्यता दोनो स्थल मे सिद्ध होती है ।

यहां शका यह होती है कि जातेष्टि आदि नैमित्तिक विधि मे यह उपर्युक्त विधि प्रत्यय का अर्थ सगत नही होता। क्यो कि जातेष्टि कर्म सम्पादन करने के समय भगवन्निग्रह रूप प्रत्य-

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञा यस्तामुल्लंघ्य वर्तते ।
आज्ञाच्छेदी मम द्रोही न मद्भक्तो न वैष्णवः ॥३८॥
अपि च-प्रतिष्ठा सर्वधर्माणां प्रसादकात्मनां हरेः ।
तदाज्ञा रूपमनघं शास्त्रं श्रुत्यादिमानयेत् ॥
एवंगीताशास्त्रेऽपि-ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥

इत्याद्यनेक प्रमाणावगतभगवदाज्ञारूपशास्त्रप्रतिपाद्यकर्मणामनुष्ठाने भगवदनुग्रहरूपोऽभ्युदयफलन्तेषामननुष्ठाने च निग्रह इति नित्यविधिस्थले जातेष्टयादिनैमित्तिकस्थले च निग्रहविशेषस्यानुदयात्तदभावः प्रायश्चित्तस्थले तु निग्रहविशेषस्योत्पत्तिप्रतिबन्धादेव तदभाव इति सर्वं सुस्थम् । येतु नित्यनैमित्तिककर्मणोः फलं न विद्यतेऽन्यथा सफलत्वेन काम्यत्वापत्ते स्त्रैविध्यानुपपत्तेरित्याहुस्तत्प्रौढिवादमात्रम् । तयोरपि फलवत्त्वमवश्यमङ्गीकार्यमन्यथा तयोः प्रवृत्यनुपपत्तेरितिदिक् ॥३९॥

वाय की उत्पत्ति ही नही हुई । इस शका का परिहार यह है कि नित्य स्थल मे प्रायश्चित्त स्थल मे और जातेष्टयादि रूप नैमित्तिक स्थल मे निग्रहाभाव को उत्पन्न करने वाला कृतिसाध्यत्वरूप ही अवश्य कर्तव्यत्वको सर्व स्थल के लिये विद्व्यर्थ मान लेना चाहिये। इस प्रकार मान लेने पर किसी भी स्थल मे दोषापत्ति न होगी। इसका विवेचन निम्न प्रकार से समझाना चाहिये । शास्त्रों मे स्वय भगवान् कहते है कि--श्रुति और स्मृति यह दोनो मेरी आज्ञा रूपही है, पुरुष इन दोनोंका उल्लघन करता है अर्थात् नही मानता स्वेच्छासे वर्तता है वह मेरी आज्ञाका छेदन करने वाला है एव मेरा द्रोही है वह न मेरा भक्त है न वैष्णव ही है ॥ ३८ ॥

और भी शास्त्रो मे कहा है कि "सब धर्मो की प्रतिष्ठा भगवत्कृपा पात्र सज्जनो के लिये भगवदाज्ञा का पालन करना ही है और भगवान् की आज्ञा रूप ही निष्पाप शास्त्र है उनको अवश्य मानना चाहिये" । इसी प्रकार गीता शास्त्र मे स्वय भगवान् कह रहे है कि "जो लोग श्रुतिस्मृति की अवज्ञा करके मेरे मत रूप जो श्रुति स्मृति आदि है उनको नही मानते वह सब प्रकार से मोहित होकर नष्टबुद्धिवाले गिने जाते है" ।

इत्यादि अनेक प्रमाणो से यही सिद्ध होता है कि, भगवदाज्ञा रूप जो शास्त्र है उनसे प्रतिपादित जो कर्म है उनका पालनकरना भगवदनुग्रह माना जाता है और शास्त्र प्रतिपादित जो नित्यादि कर्म है उनके पालन न करने से भगवान् के कोप का भाजन माना जाता है । इसीको निग्रह शब्द से कहा है। नित्य विधि स्थलोमे और जातेष्टयादि नैमित्तिक स्थल मे उन कर्मो का अनुष्ठान कर लेने पर निग्रह विशेष की उत्पत्ति ही नही होती । इसलिये निग्रहाभाव ही ठीक हुआ । और प्रायश्चित्त स्थल मे निग्रह विशेष की उत्पत्ति का प्रतिबन्ध हो जाने के कारण निग्रहाभाव है इसलिये सर्वत्र एक रूप से ही विधि प्रत्यय के अर्थ की सगति हो जाती है । जो लोग नित्य नैमित्तिक कर्मका फलही नही मानते वह अपने वक्तव्य मे यह कारण बताते है कि यदि नित्य और नैमित्तिक कर्मोका फल माना जाएगा तो उनको काम्यत्वापत्ति होगी और ऐसा होने

काम्यविधाविष्टसाधनत्वस्य विध्यर्थतया तत्प्रतिपादितस्य "वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः" वायुर्वै क्षेपिष्ठादेवता वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति स एवैनं भूति गमयति" इत्यादेः कर्मणः स्पष्टमेव फलवत्वमुपलभ्यते ।

तथा चास्या संसृतेर्दुःखबहुलतया सुखमात्रैकलिप्सोः फलार्थिनोऽखिलजगद्धितानुशासनपराम्नायसमधिगतफलप्राप्तये यथा वैदिके कर्मणि प्रवृत्तिरुपपद्यते तथा वैधेष्वपायान्तरेष्वपीति साम्यमेव फलप्रयोज्यप्रवृत्तेरिति । अर्थित्वावच्छेदेन प्रवृत्तेर्निश्चितत्वात् ।४०।

एवञ्च काम्यविधिसमधिगतकर्मभगवत्प्रसत्तिप्रयोजकध्यानार्चनमंत्रजपादिकर्मणोरुभयोर्मध्ये "अक्के चेन्मधुविन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेद्" इति न्यानेन भगवदनुकल्पानुबन्धिनामेव कर्मणामविलम्बेन निःश्रेयससमर्पकत्वात्तान्येव प्रथमतोऽनुष्ठातारमनुबध्नुयुरन्यदखिलकर्मकलापानुष्ठानात् । ।।४१।।

न चैवं काम्यविधेरानर्थक्यं तत्प्रतिपादितेऽपरिमितशरीरायासार्थव्ययादिसाध्ये क्षुद्रफले सत्यक्षय्यफलके भगवदर्चनमन्त्रजपादिलक्षणेऽल्पायाससाध्ये कर्मणि फलमात्रैकप्रेप्सोर्नियोज्यस्य प्रवृत्तेरयोगादिति वाच्यम् । नियोज्यतावच्छेदकधर्मणा वैविध्येन भिन्नफलार्थिश्रीत्यनुगुणप्रवृत्तिरुपपद्यत एवानियतदेशकालफलेषु काम्यकर्मसुपरिच्छिन्नफलाभिलाषुकाणामिति न किञ्चित्तिरोहितं प्रेक्षावताम् । तथा च वेदोदितफलार्थिनः सतः पुंसोऽत्र मनो प्रवृत्तेरनुष्ठेयतोपपद्यतेतरामिति ।।४२।।

से तीन प्रकार के कर्म नही कहे जा सकते । इसलिये उन स्थलो मे फल नही मानना चाहिये । यह उनका केवल प्रौढिवाद है । नित्य और नैमित्तिक कर्मो का भी फल मानना ही चाहिये । अन्यथा निष्फल होनेके कारण उन कर्मो मे किसी भी मनुष्य की प्रवृत्ति ही न होगी ।। ३९ ।।

काम्य विधिमे तो इष्टसाधनत्वको विध्यर्थ होनेसे तत्प्रतिपादित वायु देवता के "वायव्य" इत्यादि कर्मो को स्पष्ट ही फलवत्व है ।

सुख की इच्छा वाले मनुष्यो को जिस प्रकार वैदिक कर्म मे प्रवृत्ति होती है ठीक उसी प्रकार वैध उपायान्तरो मे भी प्रवृत्ति भली प्रकार से होगी क्योंकि जहा अर्थिता होती है वहा प्रवृत्ति अवश्य ही होती है ।। ४० ।।

फलित यह हुआ कि काम्य विधि से जाने गये कर्म और भगवत्प्रीति प्रयोजक जो कर्म है इन दोनोमे "गृह कोण मे जो मधु मिलता हो तो दूर पर्वत मे जानेकी कोई आवश्यकता नही" इस न्यायसे भगवान्की कृपाके देनेवाले कर्मोमे ही प्राधान्य होगा और उन्ही के अनुष्ठान के लिए प्रथम प्रवृत्ति होगी । काम्य कर्मोमे अधिक क्लेश होने के कारण मंद प्रवृत्ति होगी अथवा तो प्रवृत्ति ही न होगी ।। ४१ ।।

यहा पर यह शंका नही कर सकते कि वैदिक काम्य विधि को ही आनर्थक्य हो जायगा । क्योंकि अल्पायाससाध्य भगवत्सम्बन्धि कर्मो के होने के कारण बहुत आयाससाध्य वैदिक काम्य कर्मोमे क्यो प्रवृत्ति करनी चाहिये । क्योंकि फलार्थियोंकी कामना भिन्न भिन्न प्रकार की देखो

नन्वेवं तृतीयतुरीययोरेकार्थत्वम् । तृतीयकल्पेऽपि प्रवृत्त्यनर्थान्तरभूताया एव कृतेः साध्यत्वस्यानपायादितिचेन्मैवं वोचः । तृतीयकल्पप्रतिपाद्यकृतिसाध्यत्वस्यानुष्ठातरितद्योगमात्रमुच्यते नत्वावश्यकतयानुष्ठेयत्वम् । चतुर्थकल्पकल्पितायाः प्रवृत्तिविधेयतायास्त्वनुष्ठातुर्नियतानुष्ठेयत्वमिति तयोरर्थान्तरत्वादिति सर्वंचतुरस्रम् ॥४३॥

अथ "वेदैकसमधिगम्यत्वात्मकं" पञ्चमं वैदिकत्वमालोचयामः । वेदैकसमधिगम्यत्वमित्युदीर्यमाण एकपदमहिम्ना वेदपदाभिधेयमंत्रब्राह्मणान्यतराधिगमविषयत्वे सति तदितरप्रमाणाविषयत्वमिति लभ्यते ॥४४॥

एतादृग्वैदिकत्वेऽभ्युपगम्यमाने लोके सर्वैस्तान्त्रिकैर्वैदिकत्वेन व्यवह्रियमाणानां कर्मकलापानामवैदिकत्वमापद्येत। मंत्रब्राह्मणातिरिक्तागमस्मार्तपौराणिकादिप्रमाणवेद्यत्वात्। भूयांसि कर्माण्याम्नायश्रुतान्येवानुवदन्त्यागमस्मृतिपुराणादयः । नित्यसन्ध्याग्निहोत्रादिकर्मणां श्रुतिस्मृत्यादिष्वसंशयं निर्दिष्टाना न केनचिद्धर्मवशीकृतस्वान्तेन मृष्यतेऽवैदिकत्वमित्येतादृशं तत्वं यथान्येषु कर्मसुनोपपद्यते तथा प्रकृतेऽप्यस्मिन् श्रीराममनौ नोपपद्यन्तां का नो हानिरिति ॥४५॥

वेदैकभागब्राह्मणदृष्टार्थाधिकृतत्वमिति षष्ठं वैदिकत्वमत्र श्रीरामषडक्षरे सुतरामुपपद्यते ॥४६॥

जाती है इसलिये कामनाके अनुसार भिन्न भिन्न फलो के लिये फलाभिलाषियोकी भिन्न फलदायी वैदिक काम्य कर्मोमे भी अवश्य ही प्रवृत्ति होगी । इस प्रकार वेदोक्त काम्यादि कर्मो मे प्रवृत्ति करते हुए भी विद्वानो की श्रीराम मन्त्र म प्रवृत्ति होने मे कोई बाधक नही है ॥ ४२ ॥

इस चतुर्थ कल्प मे और तृतीय कल्प मे एकार्थत्व होने कि शका नही करनी चाहिये क्योंकि तृतीय कल्प मे प्रतिपादित जो कृति साध्यत्व है उनका अनुष्ठान कर्त्तामे सम्बन्ध मात्र कहा गया है आवश्यक रूप से नियंत्रण नही किया गया । और इस चतुर्थ कल्प मे जो प्रवृत्ति विधेयता है उनका अनुष्ठान कर्ता को नियत रूपसे 'करना ही चाहिये' इस प्रकार नियन्त्रण किया गया है इसलिये तृतीय और चतुर्थ वैदिकत्वमे सुतरा भेद सिद्ध होता है ॥४३॥

अव वैदिक समधिगम्यत्व रूप पंचम वैदिकत्वका विचार किया जाता है । एक वेद से ही जाने जासके इस कथनमे 'एक' पद आया है । इसका अर्थ यह होता है कि मन्त्र और ब्राह्मण के सिवाय अन्य किसी प्रमाण से न समझा जावे अर्थात् अन्य किसी प्रमाण का विषय न हो ॥४४॥

अब यदि ऐसा भी कोई वैदिक होतो लोक मे सर्व विद्वान् जिन कर्मो को वैदिक कहते है उन सबको अवैदिकता सिद्ध होगी । क्योंकि मन्त्रब्राह्मण से अतिरिक्त आगम, तन्त्र, शास्त्र, स्मृति और पुराणोसे वह कर्म वेद्य है । बहुतसे ऐसे कर्म है जो वेदमे कथित होते हुए भी आगमस्मृति और पुराणादि मे आते है । नित्य सध्या और अग्निहोत्रादि कर्म स्मृतिमे असंदिग्ध रूप से उपदिष्ट है ऐसे कर्मो को कौन धर्मानुरागी अवैदिक कहेगा । यदि कोई संध्यादि कर्मको अवैदिक मानता हो तो ऐसा अवैदिकत्व राममन्त्रमे हो तो उससे हमको क्या हानि है ॥ ४५ ॥

तथाहि—मंत्रब्राह्मणयोरेव वेदपदाभिधेयतयोपनिषद्रूपब्राह्मणात्मके तदेकभागे येऽर्थाः पुरुषार्थतयोपदिश्यन्ते तेष्वधिकृतत्वमेवेत्यर्थकमिदं वैदिकत्वम् । पुरुषाभिलषित फलभूतानाञ्च तदर्थानां रामरहस्याद्युपनिषत्स्वनेकधोपवर्णितानामवाप्तिरेवास्य श्रीराम-मंत्रस्य प्रयोजनमितितु निर्विवादम् ॥४७॥

तद्यथा रामरहस्योपनिषदि "सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्तथा । प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हनुमन्तमथाब्रुवन् । इत्यारभ्य श्रीरामतत्वमवलम्ब्य प्रश्नस्तदुत्त-रञ्चाञ्जनेयेन भगवताभिहितम् । ततश्च भूयस्तारकं श्रीरामपडक्षरमुद्दिश्य तेषामेव प्रश्नः । ते हनुमन्तं प्रपच्छुः 'आञ्जनेय ! महाबल विप्राणां गृहस्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्यादिति" । सहोवाच श्रीराम एवोवाचेति । येषामेव पडक्षराधिकारो वर्तते तेषां प्रणवाधिकारः स्यान्नान्येषाम् । केवलमकारोकारमकारार्धमात्रा सहितं प्रणवमूह्य यो राममंत्रं जपति तस्य शुभकरो ह्यहम् । तस्य प्रणवस्थाकारस्योकारस्य मकारस्यार्ध-मात्रायाश्च ऋषिश्छन्दो देवता तत्तद्वर्णावस्थानं स्वरवेदाग्निगुणानुच्चार्यान्वहं प्रण-वमंत्राद्द्विगुणं जप्त्वा पश्चाद्राममंत्रं जपेत् । स रामो भवतीति "रामपडक्षरीत्यादि-भिर्मन्त्रैर्यो मां नित्यं स्तौति तत्सदृशो भवेन्नकिम् भवेन्नकिम्" "सनकाद्या मुनयो हनुमन्तं पप्रच्छुः श्रीराममंत्रार्थमनुब्रूहीति । हनूमान् होवाच । सर्वेषु राममंत्रेषु मंत्रराजः षडक्षरः । एकधाथ द्विधा त्रेधा चतुर्धा पञ्चधा तथा । षट्सप्तधाष्टधा चैव बहुधायं व्यवस्थितः । पडक्षरस्य माहात्म्यं शिवो जानाति तत्त्वतः" । तत्त्वमस्यादिवाक्यन्तु केवलं मुक्तिदं यतः । तथा मुक्तिप्रदं चैतत्तस्माढप्यतिरिच्यते । मनुष्वेतेषु सर्वेषाम-धिकारोऽस्ति देहिनाम् । मुमुक्षूणां विरक्ताना तथा चाश्रमवासिनाम् । प्रणवत्वात् सदाध्येयो यतीनां च विशेषतः । राममंत्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न संशयः । "राम-

इसके आगे "वेदके एक भाग मे जिसका प्रयोजन देखा गया हो और उस प्रयोजन के लिये जिसका अनुष्ठान किया जाता हो उसे भी वैदिक माना जाता है" यह छठा वैदिकत्व भी इस श्रीराम षडक्षरमे अच्छी तरह उपपन्न हो जाता है ॥ ४६ ॥

इसका विवेचन मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद पद से कहा गया है इन मे से उपनिषद रूप जो ब्राह्मणात्मक वेद भाग है इस वेद भाग मे पुरुष कि अभिलाषा पूर्ति के लिये जो फल कहे गये है उनके साधन मे समर्थ जो हो उसे वैदिक कह सकते है यह षष्ठ वैदिकत्व का तात्पर्य है । पुरुषेच्छानुसार फलोंको देने वाला यह श्रीराम मन्त्र है यह राम रहस्यादि उपनिषदो मे स्पष्टतया वर्णित है ॥ ४७ ॥

श्रीरामरहस्योपनिषद् मे इस प्रकार लिखा है कि, 'एक बार सनकादिक योगि वर्य अन्य ऋषि और प्रह्लाद आदिक भक्त श्री हनुमान जी से पूछने लगे, हे आजनेय ! हमको श्रीरामतत्व का और श्रीराम मन्त्रका उपदेश कीजिये । यहा से सब ऋषियों के अनेक प्रश्न है । और श्री हनु-

मंत्राणां कृतपुरश्चरणो रामचन्द्रो भवति'' एतदनुकल्पमेव रामोत्तरतापिन्याम् । अथ हैनं भारद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्य किं तारकं किं तारयतीति । महोवच याज्ञवल्क्यस्तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं दीर्घानलपुनर्माय नमश्चन्द्राय नमो भद्राय नम इत्येतत् ब्रह्मात्मिका सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्'' ''त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् । जीवन्तो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते'' । अखण्डैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः । रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दश्चिदात्मकः । नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम् । सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षव इति । य एवं मंत्रराजं श्रीरामषडक्षर नित्यमधीते । सोऽग्निपूतो भवति । स वायु पूतो भवति स आदित्यपूतो भवति । स सोमपूतो भवति । स ब्रह्मपूतो भवति । स विष्णुपूतो भवति । स रुद्रपूतो भवति । स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति । सर्वं क्रतुभिरिष्टवान् भवति । तेनेतिहासपुराणाना रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि सकलानि भवन्ति । दश पूर्वान् दशोत्तरान् पुनाति । स पङ्क्ति पावनो भवति । स महान् भवति । सोऽमृतत्वञ्च गच्छति'' । इत्याद्यनेकवेदैकभागब्राह्मणवचनान्यत्रप्रामाण्यमभिदधते ॥४८॥

'न चोपनिषदा न वेदैकभागब्राह्मणरूपत्वमितिवाच्यम्' 'शेषे ब्राह्मणशब्दः' (२।१।३३) इति जैमिनीयेनोपनिषदामपि ब्राह्मणपदनिर्देश्यत्वमेवेत्युक्तम्प्रागेवेति नात्र पुनर्विवेचनीयतामर्हत्येतत् ॥४९॥

नचान्यवैदिककर्मकलापस्यापि ब्राह्मणभागनिर्दिष्टफललक्षणार्थेऽधिकृतत्वादेव वैदिकत्वमिति ततः को विशेष इति वाच्यम् । न कश्चिद्विशेषस्तद्वदेवास्यापि वैदिकत्वमित्यवेहि । यदि विशेषान्वेषणेआग्रह एव चेत्तर्हि साक्षात् परमपुरुषार्थलक्षणफलोपयिकत्वमेवास्य मंत्रराजस्य । अन्य वैदिककर्मकलापस्य तु परम्परया चरमफलप्रयोजकत्वमित्यस्त्यनयोर्विशेषः ॥५०॥

मानजी का उत्तर है । इस प्रकरण मे श्री हनुमान जी ने श्रीराम मन्त्र का वर्णन और फल भी खुब कहा है । यह सब मूल से जान लेना चाहिये ॥ ४८ ॥

यहा यह शंका होती है कि उपनिपदो को वेद का एक भाग ब्राह्मण नहीं कहाजा सकता । इसका उत्तर यह है कि शेषे ब्राह्मण शब्द इत्यादि जैमिनि सूत्रसे उपनिषदोको भी ब्राह्मणही माना गया है । यह विपय प्रथम ही कह दिया गया है इसलिए अव दुहराया नही जाता ॥४९॥

यदि कोई यह कहे कि अन्य कर्म भी ब्राह्मण निर्दिष्ट फल देते है । अत उन कर्मोसे इस मे क्या विशेपता है । तो इसका उत्तर यह है कि इसमे कोई विशेपता नही । वैसेही यह भी वैदिक है । यदि विशेपता ही आप चाहते है तो सुनिये । वह यह है कि श्रीराम मन्त्र साक्षात् मोक्ष प्रद है और अन्य वैदिक कर्म परम्परया मोक्ष फल देते है । अथवा नही भी देते । यही विशेषता है ॥ ५० ॥

तथा च–"पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति पशुबन्धयाजी सर्वान् लोकानभिजयति । तरति पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उचैनमेवं वेद" इत्यादौ वेदैकभागब्राह्मणदृष्टब्रह्महत्यातरणलक्षणार्थेऽधिकृतस्याश्वमेधस्य वैदित्वमूरीचक्रुर्वैदिककर्मठास्तथैव प्रकृतेऽप्यस्य मंत्रराजस्य वेदभागदृष्टफलकत्वादक्षत षष्ठं वैदिकत्वमिति । ।।५१।।

इदमत्र विचार्यतामाश्रयति । भवन्मते मंत्रभागस्य प्रयोगमात्रोपकारकत्वाद्द्रव्यदेवतयोरुपवर्णनमात्रमत्र मंत्रेष्वभिलक्ष्यते । विनियोगप्रयोगानुष्ठानन्तु ब्राह्मणग्रन्थेनैवाखिलकर्ममार्गस्येति । ततश्चब्राह्मणोपदर्शिता फलबलाधायकत्वेन वैदिकत्वं यदि नाधिगच्छामस्तर्हिं वैदिकपदगोचरतैव तपस्विनी समाकुलास्यादिति समस्तस्य ब्रह्मणावगतार्थकस्य वैदिकत्वमास्थेयम् ।।५२।।

मंत्राणामपि "वैदिकोयं मंत्र" इत्याख्यया यथा वैदिकत्वं तथा प्रकृतेऽपीति न किञ्चिन्निगूढम् । अनेन सप्तमकल्पस्य वेदांशमात्रदृष्टार्थकत्वस्यापि विवेकः सम्पद्यतेतरामिति नाधिकं प्रपंच्यते ।।५३।।

न चैवमपि सप्तमकल्पत्वभगप्रसंगः शक्यशंकः । वेदांशमात्रेत्यादिवक्तुर्मंत्रभागमात्रे दृष्टप्रयोनत्वं ज्ञायते । उत्तरयितुश्च मंत्रब्राह्मणयोरुभयोरपि वेदांशत्वाद्ब्राह्मणभागे दृष्टफलकत्वात्तस्यापि च वेदांशत्वाद् गतार्थता स्पष्टैव । एवं च कल्पकर्तुराशयाकलने-

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जैसे अश्वमेध यागका ब्रह्महत्या विनाशन फल है । यह फल वेदके एक भाग ब्राह्मण भागमे ही है । और इस फल को ब्राह्मण भाग मे होने पर भी वैदिक ब्राह्मणोंने अश्वमेध यज्ञको वैदिक माना है वैसे ही श्रीराम मन्त्र का भी ब्राह्मण भाग मे फलश्रुत होने से वैदिकत्व निर्विवाद सिद्ध है ॥ ५१ ॥

यहा पर यह विचार हो सकता है कि आपके मत मे मन्त्र भाग को प्रयोग मात्र का ही उपकारक होने के कारण द्रव्य और देवता का ही वर्णन मन्त्र भाग मे माना जाता है । विनियोग द्वारा प्रयोग का अनुष्ठान तो ब्राह्मण ग्रन्थसे ही सब कर्मोका मानना होगा। ईस अवस्था मे ब्राह्मण भाग के अनुसार फल प्रापकतया यदि वैदिकत्व न स्वीकार करे तो वैदिक पदका कोई अर्थ ही न रहेगा । इसलिए ब्राह्मण भाग से ज्ञात समस्त अर्थ वाले कर्म कलाप को वैदिक मानना ही पडेगा ॥ ५२ ॥

मन्त्रोंमे भी 'यह मन्त्र वैदिक है' इस समाख्यासे जिस प्रकार वैदिकता मानी गयी है इसी प्रकार श्रीराम मन्त्र मे भी वैदिकता सुतरा सिद्ध है इसमे लेशमात्र भी भेद नही है । इस छठे कल्प के विवेचन से सप्तमकल्प का भी विवेचन हो जाता है। अत इसके लिए अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है ।।५३।।

इस प्रकार कल्प का अर्थ होने से सप्तमकल्प का कोई अर्थ नही रहता यह शका नहीं करनी चाहिये । सप्तमकल्प विधाता के हृदय मे यह आशय है कि मन्त्र भाग मात्र मे फल होना

नास्य कल्पस्य समञ्जसत्वेऽपि विवेचयितुरुभयोरपि वेदांशप्रत्ययस्य प्रामाणिकत्वेन प्रहितोत्तरतेति तत्तात्पर्यम् ॥५४॥

अथाष्टमकल्पक्लृप्तवैदिकत्वं विविच्यते । तद्धि वेदोभयभागदृष्टार्थकत्वरूपम् । एतस्यापि च मंत्रब्राह्मणाख्यवेदांशयोरपि प्रयोजनानुसंधित्सयोच्चार्यमाणत्वेनास्त्येव समन्वयोऽस्मिन्मंत्रराज इति निश्चयः ॥५५॥

तथाहि षष्ठकल्पकल्पनायामस्माभिरुपनिषद्रूपवेदैकभागेस्य श्रीराममनोरुपपत्तिः प्रादर्शि । इदानीमपरवेदभागे मंत्ररूपेऽप्युपपत्तिः प्रदर्श्यते । मन्त्रभागेऽपि भगवद्रामचन्द्रस्य कथामन्त्रमहात्म्यादिक कृत्स्नं यथावदुपलभ्यते । अत एव च 'वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना । तस्माद्रामायणं देवि ! वेद एव न संशयः' । इत्याद्यगस्त्यसंहितावचनानि "स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदार्थपरिनिष्ठितौ । वेदोपबृहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः । काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्" इत्यार्षवचनानि च वेदोपबृंहणप्रयोजनाभिधायिकान्युपपद्यन्ते ॥५६॥

एवमेव 'मन्त्रह्रदात्कथाकुल्या विद्या केदारमागता । मोक्षस्य च प्रसूर्मध्ये पीयते कर्ममार्गगै' रित्यभियुक्तवचनस्यापि संगतिः ॥५७॥

चाहिये । इसी आशयसे सप्तम कल्प की रचना है । उत्तरदाता मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनो को वेदाश मानता है इस लिये ब्राह्मण भाग मे फल होने से और उसे भी वेदाश होने से 'गतार्थत्व' स्पस्ट ही है । तात्पर्य यह है कि सप्तम कल्पकार को आशय का परिज्ञान न होने के कारण इस कल्प की समञ्जसता ज्ञात होती है । परन्तु विवेचन कर्ता मन्त्र और ब्राह्मण तीनो भागों को वेद मानता है । अत एव वह इस प्रकार उत्तर देता है इसलिये दोनो का अभिप्राय युक्ति युक्त है ॥ ५४ ॥

अब अष्टम कल्प के विषय मे लिखा जाता है । तद्धि इत्यादि कल्प का आकार है । इस अष्टम कल्प का भी वेद के दोनो भागो मे प्रयोजन के लिये मन्त्रराज को अधीत होने के कारण ठीक से समन्वय होता है ॥ ५५ ॥

इसका विवेचन इस प्रकार है । हमने षष्ठ कल्प के उत्तर मे वेद के एक भाग उपनिषद् रूप ब्राह्मण मे श्रीराम मन्त्रकी उपपत्ति की है । अब दूसरे (मन्त्र) भाग मे भी मन्त्रराज की सिद्धि दिखायी जाती है । मन्त्र भाग मे भी भगवान श्रीरामचद्रजी महाराजकी कथा तथा मन्त्र और उन का माहात्म्य आदि यथावत् उपलब्ध होते है । इसी लिये अगस्त्य सहिता के तथा अन्य भी आर्ष वचनो की सगति होती है । अगस्त्य सहिता मे लिखा है कि 'वेदसे ज्ञेय पर पुरुषने श्रीदशरथजी से अवतार धारण किया और वेदने स्वयं प्राचेतस श्रीवाल्मीकि से रामायण स्वरूप होकर अवतार धारण किया । इसलिये हे देवि ? श्रीवाल्मीकि रामायण वेद ही है' इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण मे भी लिखा है कि ऋषिने कुश और लव को बुद्धिशाली और वेदार्थ मे निष्णात देखकर वेद के उपबृहण के लिये श्री जानकीजी के महान् चरित्र वाले रामायण काव्य का उन दोनो को उपदेश दिया । इनसब बचनो की सगति उक्त प्रकार से मानने पर ही होती है ॥५६॥

अतएव ऋग्वेदे तृतीयाष्टके पञ्चम्यां सायणभाष्यमपि संगच्छते । तथाहि—

वीडौसतीरभिधीरा अतृन्तन्प्राचाहिन्वन्मनसासप्तविप्राः ।

विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नभसाविवेश ॥

(सायणभाष्यम्) पुरा किलांगिरसांगावः पणिनामकैः सुरैरपहृत्य निगूढेकस्मिश्चित्पर्वते स्थापिताः । ते चांगिरसस्तत्प्राप्त्यर्थमिन्द्र तुष्टुवुः । स्तुतश्च स इन्द्रो गवान्वेषणाय देवशुनीं प्राहिणोत् । सा च गवां गवेषणपरा सती तत्स्थानमलभत । तया विज्ञापित इन्द्रस्ता गा आनीयांगिरेभ्यः प्रादादित्यैतिहासिकी कथा । तथा चास्या ऋचोऽयमर्थः । धीराः धीमन्तः सप्तविप्रा मेधाविनः सप्तसंख्याका अगिरसो वीडौ दृढे पर्वते सतीर्निरुद्धा सतीर्गा अभि अभिलक्ष्यातृन्दन् निधानमपावृण्वन् उपेक्षामकुर्वन् । ततस्तेंऽगिरस पर्वतबिले गावः सन्तीति मनसा निश्चित्य प्राचा येन मार्गेण प्रविष्ट स्तेनैव प्राचीनेन मार्गेण गता अहिन्वन् निरगमयन् । स्तुत्याच ऋतस्य पथ्यां मार्गे साधुभूतां विश्वां सर्वामपहृतां गामविन्दन्—अलभन्त । ततः स इन्द्रस्ता तानि अगिरसां कर्माणि प्रजानन् नित् प्रकर्षेण जानन्निद्रो नमस्कारेणांगिरसः संभावयन् तैरधिष्ठितं पर्वतमाविवेश । यथात्रायमितिहासः प्रस्फुटमुपलभ्यते । तथैवान्यत्रापि मन्त्रभागे विश्वामित्रस्योत्तितीर्षोर्नदीभिः संवाद ऐतिहासिक एवोपलभ्यते । एवमस्मिन्नेवाष्टके—'ये पायवो मामतेयम्' इति मन्त्रेऽपि काचिदृषिसम्बन्धिन्यैतिहासिक्येव कथोपलभ्यते । किं बहुनाम्नायेऽपि विविधकथोपकथनादिपरयेतिहासादिकं वरीवर्तीति न किञ्चित्तिरोहितं प्रेक्षावताम् ॥ ५८ ॥

इसी प्रकार "मन्त्र सरोवर से मोक्षकी देने वाली कथा नलिका द्वारा निकल कर विद्यारूपी क्यारियो मे प्राप्त हुई है और वह कर्म मार्ग वालो से जलपान के रूप मे उपयुक्त की जाती है" इस अभियुक्त वाक्य की भी सगति हुई ॥ ५७ ॥

अतएव ऋग्वेदके ३ अष्टक मे पंचमी ऋचाके सायणभाष्यकी संगति भी होती है । मूल मन्त्र मे एक इतिहास आया है । वह इस प्रकार है । पूर्व काल मे कभी अगिरा नामके ऋषियों की गायो को पणिनाम के असुरों ने हरण करके किसी पहाड के गुप्त स्थान मे रख लिया था । उन अगिराओ ने गायों की प्राप्ति के लिये इन्द्र की स्तुति की । प्रसन्न होकर इन्द्र ने उनकी गायों की खोज के लिये देव शुनी को भेजा । वह गायो के पदो का अन्वेषण करती जहा वह थी वहा पहूँच गयी औ इन्द्र को आकर कह दिया । यह पश्चात् इन्द्रने उन गायों को अगिरा नामके ऋषियोंको प्रदान कर दिया । यह इतिहास मन्त्र भाग मे ही आया है । जिस प्रकार इस मन्त्र मे यह इतिसास मिलता है । इसी प्रकार दूसरे मन्त्रो मे नदियों को पार उतरने की इच्छा वाले विश्वामित्र ऋषि और उन नदियों का ऐतिहासिक संवाद भी मिलता है एवं इसी तृतीयाष्टक मे 'ये पायवोमामतेयम्' इस ऋचामे किसी ऋषिकी कोई प्रसिद्ध (ऐतिहासिक) कथा लिखी गयी है । किंबहुना मन्त्र भाग (संहिता) मे भी नाना प्रकार की शतश कथाएं मिली है ॥ ५८ ॥

अत्र वेदव्याख्याता नीलकण्ठः "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यन्यस्मिन्देवा अधि-विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेदकिमृचाकरिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते" । इति मन्त्रेण सर्वासामृचां सर्वेन्द्रियदेवताधिष्ठानभूतपरमव्योमशब्दितब्रह्मपरत्वावधारणात् । अतद्वि-दोध्ययनादेर्वैयर्थ्याभिधानाच्चाध्यात्मपरतयाप्ययं मन्त्रो व्याख्येय इति । एवं तुग्रोह भुज्युमश्विनोदमेधेरयिनं कश्चिन्ममृवामवाहाः । तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरतरिक्षप्रुद्भि-रपोदकाभिः ।

इत्यत्र कथामालम्ब्य देवता स्तूयते तत्रालम्बनीभूताना तुग्रादिपदार्थानामनि-त्यानां संयोगेन वेदस्यापौरुषेयत्वं मा वाधिष्ठ इति देवताधिकरणेऽवान्तरतात्पर्येण तेषा प्रतिकल्पं समाननामरूपाणामुत्पत्तिमभ्युपगम्य व्रीह्यादिपदार्थानामिव प्रवाहानादित्व-मुक्तम् ॥५९॥

चमसाधिकरणेत्वेवं जातीयकानां कथारूपकेण ब्रह्मविद्यायां मुख्यं तात्पर्यमिति निश्चीयते । तत्रहि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्" इत्यादिमंत्रेषु अजादिशब्दाना श्रौतार्थपरिग्रहे मन्त्रस्याधिगतार्थगमकत्वेनाप्रामाण्याद्वैयर्थ्यमाभूदिति तेषां 'न जायत' इति योगेन मूलप्रकृत्यादिप्रतिपादकत्वमाशंक्य मण्डपं भोजयेत्यादौमण्डपस्थजनवन्म-ण्डपायिनो झटित्यनुपस्थानेन रूढिपूर्वकलक्षणातो योगस्य दुर्वलत्वात् छान्दोग्यस्थाना

अब इस विषय का वेदके प्रसिद्ध व्याख्याता नीलकठजी का ही ग्रंथ उद्धृत करके स्पष्टी करण किया जाता है। 'ऋचो अक्षरे' इस मन्त्र से सब ऋचाओ को सब इन्द्रियों के अधिष्ठान स्वरूप परब्रह्मवाचकत्व ही निश्चित है। जो परमात्म तत्व को ऋक् प्रतिपाद्य नही जानता उसका अध्ययन व्यर्थ है यह भी इसी श्रुतिमे कहा है। इसलिये आत्मतत्व विषय भी मन्त्र से कहा जाता है।

इसी प्रकार 'तुग्रोह' इत्यादि मन्त्र मे भी एक कथा लेकर देवता की स्तुतिकी गयी है। इस मन्त्र मे तुग्रादि पदार्थोका प्रतिपादन है और उन्हे अनित्य होने के कारण वेद को पौरुषेय बना देवेगे यह शका नही करनी चाहिये क्योकि वेदान्त के देवताधिकरण मे समान नाम रूप वाली प्रतिकल्प मे उत्पत्ति स्वीकार करते हुए व्रीहि आदि पदार्थो के समान उन सब को प्रवाहानादिता मानी है ॥ ५९ ॥

चमसाधिकरण मे भी इस प्रकार कथा रूपक से ब्रह्म विद्या मे ही तात्पर्य सिद्ध किया है, वहाँ पर 'अजामेकाम्' इत्यादि मत्र मे आये हुए अजादि शब्दो के लिये यदि श्रौत अर्थ का ग्रहण किया जावे तो प्राप्त अर्थ का ज्ञापक होने के कारण अप्रामाण्य होने से वेदको व्यर्थता होगी। इस व्यर्थता के रोकनेके लिये 'जो उत्पन्न न हो' ऐसी प्रकृति को अजापद से लिया जावे तो अप्रा माण्य प्रयुक्त वैयर्थ्य न होगा किन्तु जैसे 'मण्डप को भोजन दो' इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते है 'मण्ड (छाछ) पीने वाला एक, और दूसरा मण्डप के भीतर बैठे हुए समस्त मनुष्य' इन दोनों अर्थो मे 'मण्ड पीने वाले अर्थ की शीघ्र उपस्थिति नही होती परन्तु दूसरे अर्थ की ही उपस्थिति हो जाती है तात्पर्य यह है कि योगलभ्य अर्थ की अपेक्षा रूढि प्राप्त अर्थ शीघ्र ही हृदय

रोहितादिरूपाणामन्यत्रेत्यभिज्ञानात् पराभिमतप्रकृतिग्रहणे विशेषहेत्वभावाच्च तेजोबन्नात्मिकाभूतप्रकृतिरजेवाजेति अजारूपकेणात्र प्रतिपाद्यत इति सिद्धान्तितम् ॥६०॥

एवं रामायणस्य तन्मूलभूताना मंत्राणां च अवान्तरतात्पर्येण कथापरत्वं महातात्पर्येण विद्यापरत्वं च वक्तुं युक्तम् ।

ननु 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति 'यो देवानां नामधा एक एव' इत्यादिश्रुतिभ्यः परमतात्पर्यविषयीभूतस्य रामस्य सर्वैर्देवतावाचकैः शब्दैः अभिधानं युक्तम् ।

अवान्तरतात्पर्ये तु व्यवस्थाया आवश्यकत्वान्नान्यदैवत्योमंत्रो रामकथां प्रकाशयितुमीष्टे । अथ हठात्तत्परत्वंवर्ण्यते तर्हि एकस्य शब्दस्यानेकार्थता स्यात् सा चानिष्टेति चेत् ।

उच्यते तथा एकैव रेखास्थानभेदात् । एकदशशतसहस्रादिव्यपदेशान् लभते एवमेकमेव पदं वाक्यं वा पदान्तरवाक्यान्तरसमभिव्याहारादनेकमर्थं प्रत्याययति न च तावतानानार्थत्वं शब्दस्य संभवति, अपितु वृत्तिभेद एव । तथाहि एकमप्यमृतपदम् । "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।" इत्यत्र कैवल्यवाचि "अपामसोमममृता अभूम" इत्यत्र देवभाववाचि "प्रयामनुप्रजायसे तदुते मर्त्त्यामृतम्" इत्यत्र संतानवाचिदृष्टम् । यथा वा "यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवा" इति वाक्यम् "अबध्नपुरुषं पशुम्" इत्यव्यवहितातीतमंत्रावयवेन

मे आ जाता है । अत एव द्वितीय अर्थ का ही ग्रहण होता है इस लिये यहा पर भी साख्य मत सिद्ध प्रकृति नही लेकर तेज जल पृथ्वी इन भूतो की जो प्रकृति है वही ली जाती है । इसी भूत प्रकृति का अजा रूपक से प्रतिपादन है यह सिद्धान्त कियो है ॥ ६० ॥

इसी प्रकार रामायण के अर्थ प्रतिपादक मन्त्रो को भी अवान्तर तात्पर्य से कथा प्रकाशक और महा तात्पर्य से विद्या प्रकाशक मानना चाहिये ।

यहा पर यह शंका होती है कि 'सर्वे वेदा' इत्यादि अनेकश्रुतियो से परम तात्पर्य विषयीभूत श्रीराम परब्रह्म का सब देवता वाचक शब्दों से भी युक्त है । परन्तु अवान्तर तात्पर्य मे भी ता व्यवस्था करना आवश्यक है । इस पक्ष मे अन्य दैवत्य मन्त्र राम कथा का किस प्रकार प्रकाशन करेगा । यदि हठ से रामकथा का भी प्रकाशक मन्त्र हो सकेगा यह कहोगे तो अनेकार्थत्व रूप दोष होगा । यह दोष अनिष्ट है ।

इस शंकका समाधान यह है कि "जैसे एक ही रेखा स्थानोके भेदसे एक, दश, शत एवं सहस्र इन व्यपदेशो को धारण करती है इसी प्रकार एक ही पद अथवा वाक्य दूसरे पद के वा वाक्यके साथ पड जानेसे भिन्न अर्थका भी बोध करता है। ऐसा होने पर उस पदको नानार्थक नही कहा जाता । किन्तु वृत्तिभेद माना जाता है। जैसे एक ही 'अमृत' पद 'यदासर्वे' इस श्रुति मे कैवल्य मोक्ष वाचक है । 'अपामसोम' इस श्रुतिमे देवभाव वाचक है और 'प्रजामनु प्रजायसे'

जीवस्य सूक्तदेवता लोचनया परमेश्वरस्य चोपस्थितेर्जीवो ब्रह्मणि प्रविलापनीय इत्यर्थे । पर्यवस्यति तदेव "तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् , मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च" इत्येताभ्यां वाक्याभ्यामन्वीयमानं बर्हिःस्थेन पशुसोमादिना इन्द्राग्न्यादयो देवता यष्टव्या ग्ति ब्रवीति तदेवाग्निमंथनीयानामृचां परिधानीयायां विनियुज्यमानम्। "यज्ञेनैन तद्देवा यज्ञमयजन्त यदग्निमयजंत" इति ब्रह्मणे व्याख्यातमर्थं ब्रवीति ॥६१॥

तत्राध्यात्मिकोर्थो मुख्य उपेयत्वात् । अधिदैविकस्तु तत्प्रत्यामन्नत्वादमुख्यः । तृतीयस्तु मन्ततावमृतत्ववद् ध्यानयज्ञांगभूतकर्मयज्ञागयोरग्न्योर्यज्ञत्वमनिजघन्यं भवति । तथा इन्द्रादिशब्दोऽतिबलवता रामलिअंगेनोपहितः तमिदं इन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते । 'इदि परमैश्वर्ये' इतिश्रुतिस्मृतिनिर्दिष्टंमुख्यवृत्त्या स्वार्थमभिधत्ते स एव देवता लिंगोपहितस्तत्प्रत्यासन्नं शचीपति ब्रवीति । लक्षणया स एव पुनः 'ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठेत' इति श्रुत्या याहंपत्योपस्थाने विनियुक्तायामृचिद्दष्टौ गौण्या वृत्त्या गार्हपत्यमभिधत्ते ।

किञ्चोन्यत्ररूढोऽपि शब्दो लिगबलादन्यमर्थं ब्रवीति। यथा "मर्वाणि हवा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त" इतिसर्वभूतोपादानत्वलिगात् भूताकाशपरोऽपि आकाशशब्दो जगत्कारणं ब्रवीति । तस्मादवान्तरतात्पर्यविषये कथाया बलवल्लि-

इस वेद मन्त्र मे सन्तान वाचक है। जैसे 'यज्ञेन यज्ञम्' इत्यादि वाक्यका 'अवध्नन्' इत्यादि मन्त्र के अवयवार्थ विचार करने पर जीव की और सूक्त देवता के विचार करने पर परमेश्वर की भी उपस्थिति होनेपर 'जीवका ब्रह्मके साथ तादात्म्य मानना चाहिये' इस अर्थ मे पर्यवसान होता है । 'तं यज्ञ वर्हिपि' मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च' इन दोनो वाक्यो के साथ अन्वित होने पर बाहस्थित पशु सोमसे इन्द्र और अग्नि आदि देवताओका यजन करना इन अर्थो का वोधन करता है और वही अग्नि मथनीय परिवानीय और ऋचाओ के साथ विनियुक्त होकर "यज्ञेनैव तद्देवा" इत्यादि ब्राह्मण में कहे हुए अर्थका प्रत्यायक होता है ॥ ६१ ॥

इनमे उपेय होने के कारण आध्यात्मिक अर्थ ही मुख्य है। आधिवैविक अर्थ तत्प्रत्यासन्न होने के कारण अमुख्य है। और तीसरा ध्यान यज्ञ के अग भूत कर्म यज्ञीय अग्नियों को यज्ञत्व कहने वाला अतिजघन्य है जैसे सतति मे 'अमृत' पद का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार इन्द्र शब्द भी लिग बलात् 'इदि परमैश्वर्ये' इस धातु से बनने के कारण मुख्य वृत्ति से श्रीराम रूप स्वार्थ का बोधक है । वही देवता लिगबल से शचीपति को कहता है और 'ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते' इस प्रत्यक्ष श्रुति से गार्हपत्याग्नि के उपस्थान मे विनियुक्त होने के कोरण गौणवृत्ति से गार्हपत्य रूप अर्थका बोध करता है ।

और भी सुनीये--अन्य अर्थमे रूढ शब्द भी लिग बल से अन्य अर्थ का बोध करता है। जैसे 'सर्वाणि समुत्पद्यन्ते', इस वाक्य मे भूताकाश वाचक आकाश पदका अर्थ सर्वभूतोपादानत्व रूप लिंग से जगत्कारण होता है । अत अवान्तर तात्पर्य वशात् लिग बल से अन्य दैवत्य मन्त्र भी श्रीराम वाचक हो सकता है ॥ ६२ ॥

गोपहितोऽन्यदैवत्योऽपि मन्त्रो राममेव ब्रवीति । न चानेकार्थतादोषः परिहृतत्वात् ॥६२॥

इति भाष्यकृन्नीलकंठाचार्योक्तदिशा संहिताभागेऽपि उपास्यदेवमंत्रादिवर्णनं युज्यत एव । न चैककर्मणि विनियुक्ता मत्रा कथमन्यत्र चारितार्थ्यमुपगच्छेदिति वाच्यम् । एकस्मिन्नेव प्रतिपत्तृभेदेन प्रतिपत्तिभेददर्शनात् । यथा ह्येकं घटं कश्चिदसत्त्वेन कश्चित्सत्वेन कश्चिदनिर्वचनीयत्वेन तर्कबलात्प्रत्येति । यास्कोऽपि "बहुप्रजाः निर्ऋतिमाविवेश" इत्यस्य बहुप्रजाः कृच्छ्रमापद्यत इति परिव्राजकाः वर्षकर्मेति नैरुक्ता इत्येकमेव निर्ऋतिपदं द्वेधा व्याचष्टे । तस्मादस्ति प्रतिपत्तिभेदादर्थभेदो मंत्राणामिति । एवमग्रेऽप्यभिदधौ ननु रामायणीया कथा कस्यांचिदपि शाखायां वृत्रवधादिवन्न दृश्यतेऽतोस्याः श्रुतिमूलत्वमेव नास्तीति चेन्न "नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति' इति न्यायेन त्वयि वेदार्थानभिज्ञे सति न रामायणमपराध्यति । ननु वेदभाष्येऽपि न रामायणकथासूचकत्वं कस्यचिदपि मन्त्रस्य पश्याम इति चेत् । नैष दोषः विनियोगानुसारिणः कर्मत्वव्युत्पादनार्थस्य भाष्यकारीयव्याख्यानस्य निगमनिरुक्तानुसारि तात्विकव्याख्यानादूषकत्वात् । किञ्चात्यल्पमिदमुक्तमायुष्मता मंत्रार्थवादैरपि कर्मणि रुच्युत्पादनार्थमनुपपन्नोऽप्यर्थः प्रजाया अमृतत्वमात्मवपोत्खननमित्यादिरुपन्यस्यते "प्रजामनुप्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्" इति प्रजापतिरात्मनो वपा-

इस प्रकार भाष्यकार नीलकंठ आचार्य के कथनानुसार संहिताभागमे भी उपास्य देवके मन्त्रों का वर्णनयुक्त ही है । यह शंका निर्मूल है कि एक कर्म मे विनियुक्त मन्त्र अन्य प्रतिपादन कैसे कर सकता है । प्रतिपत्ता के भेदसे एक ही वस्तु मे प्रतिपत्तिमे भेद हो सकता है । जैसे एक घट ही को कोई असत् रूपसे कोई सत् रूप से और कोई अनिर्वचनीय रूप से तर्कबल से जानता है । यास्कोचार्यने भी 'बहु प्रजा निर्ऋतिमाविवेश' इस निर्ऋतिपदका दो प्रकार से व्याख्यान किया है । परिव्राजकमत से कष्ट अर्थ है और नैरुक्तो के मत से वर्ष कर्म अर्थ है । इससे प्रतिपत्ति (ज्ञान) भेद से मन्त्रों के अर्थ मे भी भेद होता है । इसी प्रकार नीलकण्ठाचार्य जी ने आगे भी कहा कि वृत्र वध की कथा जिस प्रकार वेदमे उपलब्ध होती है इस प्रकार रामायणीय कथा वेदकी किसी शाखा मे भी उपलब्ध नहीं होती । इसलिये इसे श्रुति मूलता कैसे मानी जावे ? इसशंका पर आप समाधान करते है—'यह कोई स्थाणु (स्तम्भ) का अपराध नहीं है जो इसे अन्धा नही देखता' इस न्यायानुसार तुम स्वयं वेदार्थके अनभिज्ञ हो तब रामायण की कथाका क्या अपराध है ? फिर भी यह शंकोहोकि वेदभाष्य मे भी रामायण कथा सूचकता किसी मन्त्र को नही बतायी गयीतो इसका समाधान सुनिये । भाष्यकारीय व्याख्यान विनियोगके अनुसार है । वह निगम और निरुक्तिके अनुसार किये गये वास्तविक व्याख्यानका दूषक नहीं हो सकता, और यह भी आप अल्प ही कहते है । सुनिये मन्त्र और अर्थ वाद मे भी कर्ममे रुचि उत्पन्न करने के लिये अनुपपन्न भी प्रजा को अमृतत्व, और आत्मवपाका निकालना आदि

मुदखिदत् इति च। एव च कर्मस्तावकार्थवादानुसारि भाष्यकारीयं व्याख्यानम-मुख्यम्। अत एवोक्तम्भारते"इतिहासपुराणाभ्यामित्यादि। तत्र उपबृहणं नाम—एकत्र मन्त्रे तृचे सूक्ते वा दृष्टस्यार्थस्य संक्षिप्तस्य नानास्थानेषु विप्रकीर्णानां तदनुगुणानामर्थानामुपसंहारेण पुष्टीकरणम्। तच्च येन कर्ममात्रं न श्रुतं तेन कर्तुमशक्यम्। अतस्तस्मादल्पश्रुताद्वेदस्य भयं युक्तम्। भगवानपि "यामिमां पुष्पिता वाचम्" इत्यादिनार्थवादानां मोहकत्वं ब्रुवन् तदनुसारिणो व्याख्यानस्यानादरणीयत्वं दर्शयति। मंत्रवर्णा अपि निहारेण प्रावृता जल्प्या च इति अल्पो जल्पो जल्पी तुच्छार्थप्रतिपादिका वाक् तया प्रावृता इति अज्ञानेनार्थवादैश्च वंचिताः। नन्वेवं तिष्ठतु भाष्यकारीया मर्यादा द्रव्यदेवताधिप्रकाशनद्वारा विध्यर्थ स्मारयतो मन्त्रजातस्य कथं कथासूचकत्वमुपपद्यत इति चेत्सुतरामिति ब्रूमः ॥६३॥

तथाहि सर्वोऽपि मन्त्र आध्यात्मिकीमाधिदैविकींवा कथामुपजीव्यैव कर्मांगं स्तुवन् विध्यर्थ स्मारयति। यथा "यत्कृष्णो रूपं कृत्वा प्राविशस्त्वं वनस्पतीन् ततस्त्वमेकविंशतिधा संभरामि सुभृतम्" इति मन्त्रः कृष्णाख्यब्रह्मरूपस्त्वं रूपप्रपंचं निर्माय स्थावरजंगमात्मकं तं प्रविश्य तत्र तद्वस्तु तादात्म्यापत्त्या समिद्रूपोऽसि ततो हेतोः त्वां एकविंशतिधा संभरामीति। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवत्। इति ब्राह्मणोक्तकथाप्रदर्शनपूर्वकं समिधां कृष्णभावमापादयत् तासां संभरणं स्मारयति। यथा वा "यस्य रूपं विभ्रदिमामविन्दद् गुहां प्रविष्टा सरितस्य मध्ये तस्येदं

अर्थोका उपन्यास किया है। "प्रजामनु" इस श्रुतिसे सिद्ध हुआ कि कर्मकी स्तुति करने के लिये जो अर्थ वाद है उन का अनुसरण करने वाला भाष्यकारीय व्याख्यान अप्रधान है। इसीलिये महाभारत मे कहा भी है कि, इतिहास और पुराणो से वेदका उपबृहण करना चाहिये इत्यादि। एक जगह मन्त्र मे तृचमे वा सूक्त मे अतिसक्षिप्तरूप से देखे गये अर्थ का अन्य अनेक स्थानीय तदनुसारीय अर्थ से पुष्ट करने को उपबृहण कहते है। अत जिसने समस्त कर्म नहीं जाने है वह उपबृंहण नही कर सकता। ऐसे अल्प श्रुत पुरुप से वेदको भय ठीक ही है। भगवान् गीता मे स्वयं 'यामिमा' इत्यादि वाक्य से अर्थ वादों को मोहक बताते हुए अर्थवादानु सारि व्याख्यान को अनादरणीय सूचित करते है इसी प्रकार मन्त्र वर्णभी 'नीहारेण' इस वाक्य से 'अर्थवादो से वंचित हुए' यह कहता है। यदि यह कहा जावे कि अस्तु भाष्य कारीय व्याख्यान जाने दो पर द्रव्य देवता को प्रकाशित करके विध्यर्थका स्मरण कराने वाले मन्त्रोको कथा सूचकता कैसे कही जा सकती है। तो अवश्य कही जा सकती है यही उत्तर है ॥६३॥

सुनिये। सब मन्त्र आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक कथा को लेकर ही कर्माङ्गकी स्तुति करते विध्यर्थका स्मरण करते है। जैसे 'यत्कृष्णोरूपम्' यह मन्त्र कृष्णरूप ब्रह्म आप स्थावर जंगम को स्वयं निर्माण करके और उसमे प्रविष्ट होकर उस वस्तु के साथ अभिन्न होने के कारण आप

विहतमाभरत इति मन्त्रो यस्य वराहस्य रूपं धारयन् परमेश्वरः भूमि समुद्रमध्ये निगूढस्थाने प्रविष्टामलभत् । तेनेदमुत्खातं मृत्खण्डम् आभरन्तो वयमिति" वराहावतारकथाप्रदर्शनपूर्वकं वराहविहितं स्तुवन् तत्संभरणं स्मारयति । एतेनैव प्रकारेण 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादयोऽपि मन्त्रा व्याख्येयाः । तत्र हि "इषेत्वोर्जेत्वा" इति 'शाखामाच्छिनत्ति' इति विनियोगात् हे शाखे ! भो स्वसृष्टशाखान्तः प्रवेशेन तत्तादात्म्यापन्नपरमेश्वर ! त्वां इषे अन्नाय 'अन्नंविराट्' इति श्रुतेः विराड्भावाय 'उर्जे रसाय' 'रसो वै सः' इति श्रुतेः परमानन्दप्राप्त्यैव छेदनेनावाप्नवानीति ॥६४॥

एतेन 'ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिन्सीः शृणोत, ग्रावाणः लोमभ्यः स्वाहा, चंक्रमणाय स्वाहा' इत्यादयोऽचेतनार्थे संबन्धोऽचेतनप्रवेशतत्तादात्म्यापत्तिपरतया व्याख्येयाः । एवं हि व्याख्याने क्रियमाणे 'पुरुष एवेदं सर्वम्' 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' 'सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति' 'इमानि सर्वाणि यमाविशन्ति' 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इत्यादयः श्रुतयः सर्वस्यात्ममात्रत्वं सर्वेषा शब्दानां तत्प्रतिपादनपरत्वं च दर्शयन्त्यः समञ्जसा भवन्ति । तत्र यः संभरणादिकं कर्मैव प्रशंसति स कर्मठोऽल्पश्रुतः, योवराहसउपासको मध्यमः यः कृष्ण स तत्वज्ञ उत्तम, कर्मोपास्तिज्ञान काण्डानामुत्तरोत्तरस्य

समित् रूप हो इसलिये आप को इस प्रकार से सभरण करता हूं इस प्रकार 'तत्सग्द्वा' इत्यादि ब्रह्मणोक्त कथा प्रदर्शन पूर्वक समिधाको कृष्णत्व कहते हुए उनका सभरण कराता है । जैसे "यस्य रूप" यह मन्त्र वराहावतारकी कथा को दिखाता हुआ वराहविहित की स्तुति करता हुआ सभरण करता है । इसी प्रकार 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादि मन्त्रोका व्याख्यान करलेना चाहिये। 'इषेत्वा' इसका शाखाच्छेदन मे विनियोग है । इस लिये अर्थ यह होगा कि हे शाखे ! अर्थात् शाखान्तर्यामी परमेश्वर ! तुम्हे अन्न के लिये अर्थात् अन्न द्वारा परमानन्द प्राप्तिके लिये छेदन से आपको प्राप्त होता हुं । इसी प्रकार ऊर्जेत्वा' इसका भी अर्थ है ॥ ६४ ॥

इससे 'ओषधे ! त्रायस्वैन०' इत्यादि अचेतनों का वर्णन भी चेतन प्रवेश द्वार उनके साथ तादात्म्य होने से व्याख्यान सम्पन्न होता है। इस प्रकार व्याख्यान करने पर 'पुरुषएवेद' इत्यादि समस्त श्रुतिया समन्वित होती है और 'सर्वेषा शब्दाना परमात्मन्येव पर्यवसान' यह सिद्धान्त भी संगत हो जाता है। इसमे जो कर्मठ केवल कर्म की ही प्रशंसा करना मानता है वह अल्प श्रुत है। जो वराह आदिको उपासक है वह मध्यम है । और जो कृष्ण तत्व का ज्ञानवान है वह उत्तम है। क्योकि कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डो मे उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है । क्या ऐसा संभव है कि जिससे संभरण को महत्त्व प्राप्त हो वह वस्तु संभरण से अपकृष्ट हो इसको चतुर मनुष्य ही जान सकते है । इस अवस्था मे भाष्यकारीय व्याख्यान कि 'हे शाखे ! मै तुम्हे लौकिक अन्नरस की प्राप्ति के लिये छेदन करता हू' यह केवल प्रशसार्थक है कि यह शाखा छेदन ऐसा है जिससे ऐसे सुन्दर रसकी प्राप्ति होती है । यह अर्थ कर्मजडो को रुच्युत्पादक होने से भी प्रत्यक्ष श्रुतिमूलक हमारे कथित अर्थ का बाधक नही है । दूसरी बात यह भी है कि विनियोग मात्र से केवल कर्मपरत्व ही मत्र को मान लेना भी ठीक नहीं। उसका स्वार्थ तो अवश्य मानना

प्रशस्तत्वात्, नहि येन संभग्णस्य महत्वं सोऽर्थः संभरणादमहानिति संभवतीति सहृदयग्राह्यमेतत्। तत्रैवं सति भाष्यकारीयं व्याख्यानं हे शाखे त्वां लौकिकयोरन्नरसयोः प्राप्त्यर्थं छिनद्मीति क्रियमाणच्छेदनप्रशंसार्थं मीदृशमिद शाखाच्छेदनं येनात्र रसौ लभ्येते इति सोऽयमर्थः कर्मजडानां रुचिरोऽपि पूर्वोक्तस्यार्थस्य प्रत्यक्षश्रुतिशिखरमूलस्य सहृदयग्राह्यस्य न बाधकः। किञ्च, विनियोगमात्रात्स्वार्थमुत्सृज्य केवलकर्मपरत्वमंत्रस्य नवक्तुं शक्यते। तथा हि 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्यपांसुरे'' इत्ययं मंत्रः वाङ्‌ नियमलोपप्रायश्चित्तार्थमाज्यहोमे वैष्णवोपासुयाजस्यपुरोनुवाक्यत्वेन च विनियुज्यते न चात्र तदनुकूलं दृश्यते येन विनियोगभेदेन व्याख्यानभेदोत्रकल्पयितुं शक्यते इदं त्रैलोक्यं पदत्रयेण विष्णुरतिक्रान्तवान्न तच्चित्रं यतस्तदस्य पांसुमतिपदे पांसुरूपेण सम्यगारूढमिति। न चैतेषां व्याख्यानम् इषे ''त्वा'' इति वद्विनियोगमात्रविदा पुष्करवराहवामनप्रादुर्भावान् ऐतिहासिकानजानता कर्तु शक्यमिति। ॥६५॥

तस्माज्जडानां कर्मसु यथाकथञ्चित् रुच्युत्पादनार्थो भष्यकारमते वेदे रामकथाया अदर्शनेऽपि निगमनिरुक्तोपबृंहणादिसिद्धायास्तस्या अपलापायोगात् अव्युत्पन्नाग्राह्यत्वेपि व्युत्पन्नग्राह्यत्वात्सिद्धं रामायणस्य श्रुतिमूलत्वमतस्तन्मूलमन्त्रेष्वपि रामा-

ही चाहिये। जैसे 'इद विष्णु' इस मन्त्र का विनियोग वाणी नियम लोप प्रायश्चित के लिये जप मे, सर्व प्रकार के प्रायश्चित्त के लिये आज्य होम मे और वैष्णव उपांसुयाज के लिये पुरोनुवाक्य मे होता है। पर इसमे इन कर्मो के लिये कोई लिग नही देखा जाता कि जिससे विनियोग भेद से व्याख्यान भेद किया जावे। अर्थ यह है कि इस त्रैलोक्य को तीन पद से विष्णु ने अतिक्रमण किया है। यह इसके लिये चित्र नही क्योकि यह त्रैलोक्य इसके धूल वाले पद मे पासु (धूल) रूप मे निविष्ट है। इन सब का व्याख्यान 'ईषेत्वा' इत्यादि के समान केवल विनियोग जानने वाला पुष्कर वराह, वामन आदि के इतिहास को न जानने वाला कैसे कर सकता है॥६५॥

इस लिये जडो (एक ही ओर के पदार्थ को समझने वालो) को किसी प्रकार रुचि उत्पन्न करने के लिये ही ऐसा व्याख्यान किया है। यद्यपि वेद मे रामायण कथा भाष्यकार के मत से नही भी है तथापि निगम निरुक्त इतिहास और पुराणादिसे सिद्ध पायी जाती श्रीराम कथा का अपलाप नही कर सकते। वह अव्युत्पन्न जन से अज्ञात भी हो पर व्युत्पन्न विद्वान् तो वेद मे श्रीराम कथा का स्पष्टतया अवगम करते ही है इससे श्रीरामायण को श्रुति मूलता सिद्ध हुई। अतएव वैदिक मन्त्रो मेभी श्रीरामायण के समान ही कथा भाग प्रत्यक्ष वृत्ति से ही कहा गया है। और आत्म सम्बन्धी अर्थ परोक्ष वृत्ति से कहा गया है।

इस लम्बे प्रबन्ध से नीलकण्ठाचार्य ने 'वेद को भी श्रीराम कथा मन्त्र और तन्माहात्म्य आदि का प्रकाशकत्व अच्छी प्रकार से उत्पन्न होता है'' इसका उपपादन किया है। इसीलिये वह स्वय कुछ ऋचाओ के द्वारा श्रीरामायण की कथा का प्रदर्शन करते हुए उनका व्याख्यान करते है।

यण इव कथांशः प्रत्यक्षवृत्त्या लभ्यते । अध्यात्मांशः परोक्षवृत्त्येतीत्यादि महता प्रबन्धेनाम्नायस्यापि श्रीरामकथामंत्रमहात्म्यादिप्रकाशकत्वमुपपद्यते सुतरामित्युपपादयति । अत एव च सः काश्चिदृच श्रीरामायणकथाप्रकाशनपरतया व्याचख्यौ । एतदत्रोक्तं भवति । नाहमत्रावेशादेकाक्येव प्रयते । किन्त्वपरैरपि विद्वद्भिरस्मिन्विषयेऽसकृल्लेखनीव्यापारितैवेत्यतोत्रकेषाञ्चिद्विचिकित्सोदीयाच्चेत्त एव पर्यनुयोज्याः । तस्माद्वेदकल्पपादपसंश्रयाद्यद्यत्कामयतेतत्तदुपलभ्यत इति प्राचामुपचितः पन्थाः । एवञ्चात्र पूर्वं नीलकण्ठाचार्येणैवश्रीराममंत्रः प्रादर्शिः । पूर्वमन्यैश्चास्मत्पूर्वजैः साम्प्रदायिकैस्तथैव तस्यामेवर्चि राममन्त्रमाकलय्य समुद्घाटय व्याख्यातस्तथामहमपि प्रदर्शयामि । अयं मन्त्र ऋक्संहितायामेव विद्यते ।

सचंत यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।

आयन्नक्षत्रं ददृशे दिवोन पुनर्यतो नकिरद्धानुवेद ।(अ ८ अ ६ व.११)॥६६॥

उपासनायां मंत्रमंत्रार्थयोरनुसन्धानमेव प्राधान्यमावहतीत्येतदाविष्करोति सचन्त इति । केतवो ज्ञानवन्तोऽस्य रामस्य रां संपदं 'ऋचः सामानि यजूंषि' 'साहि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतांत्रयी तत्सारभूतप्रणवरूपां शब्दतोऽर्थतश्चाविन्दन् यस्त्वत्र शब्दमय्यां सम्पदि उकारोनास्तीति मन्यते तम्प्रत्येव वदेत् यत् यतः उषसः उषसम्

इस से यह फलित हुआ मै इस विषय मे अकेला ही किसी आवेश वशात् कोई प्रयत्न नही कर रहा हूं किन्तु अन्य विद्वातो ने भी इस विषय मे मुहुर्मुहु अपनी लेखनी उठाई हे । अन इस विषय मे किसी को सदेह हो तो ये ही महानुभाव उनके प्रश्न के कर्म हो सकते है । इससे प्राचीनो से यह निश्चित हो चुका है कि वेद रूपी कल्पवृक्ष के आश्रय से जो जो इच्छा की जावे वह सब पूर्ण ही होती हे अर्थात् वेद भगवान् से सब अर्थो की सिद्धि होती है। अत श्रीराम मन्त्र के विषय म नीलकण्ठाचार्य ने भी प्रकट ऋचा को दिखाया है । और हमारे श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन तथा ज गु श्रीराघवानन्दाचार्य प्रभृति प्राचीन सम्प्रदायाचार्यो ने इसी ऋचा मे श्रीराममन्त्र का उपपादन किया है और उस का व्याख्यान भी किया है। इसी प्रकार मै भी ऋचा मे श्रीराम मन्त्र है इसे स्पष्टतया प्रदर्शित करता हू । जिस ऋचा मे श्री राममंत्र है वह ऋक् सहिता म मूल मे देखिये है ॥६६॥

उपासना मे मन्त्र और मंत्र के अर्थका अनुसन्धान करना प्रधान माना जाता है इसको प्रस्फुट करते है । 'सचंत' इस ऋक्से केतव अर्थात् ज्ञानवाले विद्वानो ने इस राम की रा–सम्पत्ति को ऋक् साम यजुर्वेद रूप एवं "वह सज्जनो की लक्ष्मी है अमृत है" इत्यादि वेद वचनो से कहा है। वेदत्रयी को सारभूत प्रणव रूप है इसको शब्द से और अर्थ से भी अविन्दन् जान लिया है जो कोई यह कहे कि इस शब्दमयी सम्पत्ति मे उकार नही है। उसके प्रति यह उत्तर है कि उषस –उषा प्रात काल के समान अल्प प्रकाशक जो विराड् है वह अकाररूप सूर्य के साथ अर्थात् पूर्ण प्रकाश उकार रूप हिरण्यगर्भ के साथ सचन्त अर्थात् ऐक्यको प्राप्त होकर स्थित है। अर्थात् कार्यत्व सामान्य से आकार मे ही उकारका समावेश है । ऐसा होने पर भी अम यही निष्पन्न

उषोवदल्पप्रकाशम् विराज अकाररूपं सूर्येण पूर्णप्रकाशेन हिरण्यगर्भेण उकाररूपेण मचन्त ऐक्यमनयन् कार्यत्वसामान्यादकारमध्ये एव उकारस्यान्तर्भावो: बोध्यः । एवमपि अमित्येवापेक्षिकं न तु रामित्यत आह चित्रामिति चित्रभानुत्वाच्चित्रो अग्निः रेफः सोऽस्यास्तीति चित्रा सस्वरशब्दवती ततः सवर्णदीर्घे रामित्यर्थः चित्रशब्दान्स्थूलसूक्ष्म-कारणानि रामित्यनेन दर्शितानि अर्धमात्रातु प्रणववदत्राप्यन्तरस्तिया रां केतवोऽविन्दन् सा पुनर्ददृशे रामिति रेफाकारमकाराः पुनर्दृश्यन्तः इन्यर्थः । तत्र दृष्टान्तो-दिवो नेति । नेत्युपमार्थः दिवः स्वप्नः स्वल्पं प्राप्य यथा जागृद्दृष्टमेवार्थजातं-पुनस्तत्शदृशंदृश्यते तद्वत्समष्टित्रयवाचकाद् रांपदात् क्रमेण मदृशव्यष्टि स्थूलसूक्ष्मकार-णवाचि रामितिपदं पुनः पठेदित्यर्थः ॥६७॥

अस्य विशेषणं आयन्नक्षत्रमिति । आ इति स्वरूप य इव आचरतीति यत् आचारक्विन्तात् यत् धातोः कर्तरि क्विविति तस्मिस्तुक् । येन य इति स्वरूपं सिद्धम् । इदं वर्णद्वयं द्वितीयेन रामित्यनेन सह पठितं चेत् रामाय इति चतुर्थ्यन्तं नाम भवति । नक्षत्रपदेन मुख्यत्वाच्चचन्द्रस्तेनास्य कारणम्-'हृदयान्मनो मनमश्चन्द्रमाः' इति श्रुतिप्रसिद्धं गृह्यते । यथा 'ता अन्नमसृजंत' इत्यन्नशब्देन पृथिवी तद्वत् तेना-गमप्रसिद्धो हृदयशब्दार्थो नमः शब्द उद्धृतो भवति एषां सर्वेषां संकलनेन—

हुआ 'राम' नही। इस पर कहते ह कि चित्राम—चित्र अग्नि का वाचक है तद्बीज रेफ है वह रेफ सस्वर स्वर विशिष्ट होने पर और अम के साथ सवर्ण दीर्घ कर देनेपर 'राम' यह पद होता है। चित्र शब्द मे मत्वर्थीय अच् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय हे। अर्थ यह हे कि रेफार्थ अग्नि रूप चिदाभास के साथ समष्टि स्थूल और सूक्ष्म कारणो का इस 'राम' पद से प्रदर्शन हुआ। अर्ध मात्रा जो ओकार मे मानी जाती है वह इस 'राम्' पद मे भी विद्यमान ह। सापुनर्ददृशे—अर्थात् रेफ अकार विशिष्ट अर्धमात्रात्मक मकार सिद्ध हुए। इसमे दृष्टान्त है दिवो नेति—न उपमार्थक है। जैसे स्वप्न मे जागृत अवस्था के देखे पदार्थ ही फिर से देखे जाते ह इसी प्रकार समष्टित्रय – वाचक रां पद से क्रम से व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म और कारण वाचि रा' इस पदको फिर पढना चाहिये ॥६७॥

इसका विशेषण आयन्, नक्षत्र, यह है। तात्पर्य यह है कि 'आ' विशिष्ट जो 'य' यह 'य' य शब्दसे आचर क्विप करके पुन क्विप और तुक करने पर निष्पन्न होता है। इसके आगे द्वितीय वार पठित राम जोडदेने पर चतुर्थ्यन्त 'रामाय' पद निकल आया। तदनतर नक्षत्र पदसे नक्षत्रो मे मुख्य चन्द्र लिया गया। इसका कारण मन और मन का कारण हृदय है। अत नक्षत्र पदसे हृदय पदार्थ लिया गया। जैसे अन्यत्र वेद म 'ता अन्नमसृजन्त' इस स्थल मे अन्नपद पृथिवी का बोधक है। इसी प्रकार यहा भी जान लेना चाहिये। फलित यह हुआ कि हृदय पदार्थ आगम शास्त्रो मे 'नम' माना गया है। इन सब वर्णोका सम्मेलन करदेने से 'रा रामाय नम' यह मन्त्र निष्पन्न होता है। इसका फल इस वाक्य से कहा जाता है। 'यतो नकिरद्धातु वेद''—अर्थात् यत्नशील पुरुष की स्थिर बुद्धि निश्चय रूप से इसको जान सकती है।

'रां रामाय नमः' इति उद्धृतो वेदितव्यः। एतत्फलमाह यतो नकिरद्धानुवेदेति। यत इति तस्य यतमानस्य यतेः नकिरति इतस्ततो विक्षिप्यत इति नकिः अविक्षिप्तं मन अद्धा साक्षात् नु निश्चित वेद जानाति एनं मंत्रं जपन्नेतदर्थं मनसा साक्षात् करोतीत्यर्थः 'मनसैवेदमाप्तव्य' मिति श्रुतेः।

अस्यामृचि स्पष्टमेव श्रीराममनोरभिधानमुपलभ्यते। नीलकंठाचार्येण यथेयं व्याख्याता तथैव मयात्र समदर्शि। तदत्रास्मदाचार्याः "कथं पूर्वीणां सूनृतानां प्रतिपाद्यो राम इत्यपेक्षायां मन्त्रोद्धारमाह सचन्तेति। यद् यस्मात् केतवो ज्ञानिनः। अस्य श्रीरामस्यचित्रांचित्रश्चित्रवर्णत्वाच्चित्रभानुरग्निः। तत्तत्त्वं रेफःस्वरयुक्तस्तत्सहिताम्। अग्निश्चिदाभासस्तन्मयं कारण ब्रह्म श्रीरामएवेतिध्येयम्। राम् रामिति श्रुतिमविन्दन् शब्दतोऽर्थतश्च ज्ञातवन्तः। चिदात्मकाऽग्नितत्त्वप्रतिपादकसस्वररेफयुक्ता रामिति श्रुति जगृहुरित्यर्थः। ननु कारणब्रह्मप्रतिपादिकोमितिश्रुतिरत्रनास्तीति चेत्तत्राह उषसः। उषसमुषोवत्सूक्ष्मप्रकाशसमष्टिसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टकारणब्रह्मप्रतिपादकाकाररूपं वर्णं सूर्येण व्यक्तप्रकाशेन समष्टिस्थूलचित्कारणब्रह्मप्रतिपादकेनोकाररूपेण वर्णेन सचन्त गमयामासुः। अकारे उकारमन्तर्भावयामासुरित्यर्थः। तत्राऽकारो वै सर्वावाक्" इति श्रुतेरिति ध्येयम्। एवञ्च रश्च अम् चेति रामिति पदं जातम्। अर्धमात्रातु पारमेश्वर्यशक्त्यात्मिकाऽन्तर्भूता ज्ञेया। शक्तिशक्तिमतोरभेदात्। एवञ्च रामिति श्रुतिः श्रुतिसारभूतप्रणवरूपेति न वाचोयुक्तिमपेक्षत इति बोध्यम्।

तात्पर्य यह है कि इस पूर्व प्रतिपादित मन्त्र का जप करते हुए इसके अर्थका अनुसन्धान करने से पदार्थ स्वरूप का मनसे साक्षात्कार होता है। क्योंकि 'मन से ही इस परम तत्व की प्राप्ति होती है' श्रुति है।

इस ऋचा मे स्पष्ट ही श्रीराम मन्त्र का स्वरूप वर्णित है। श्रीनील कठाचार्य ने जिस प्रकार इस ऋचा का व्याख्यान किया है उसी प्रकार मैंने यहा प्रदर्शित किया है। प्रकृत विषय मे भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन सम्पादित वेदरहस्यम् के रहस्यमार्तण्ड नामक भाष्य जो जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी दुर्वादध्वान्तमार्तण्ड प्रणीत है उसका संक्षिप्तसार—"रां रामाय नम" इस महा मन्त्र का उद्धार करते हुए कहते है—ज्ञानियों ने राम शब्द के 'राम्' इस अंश को अग्नि तत्त्व स्वरयुक्त रेफ पदको प्राप्त किया। क्योंकि उष कालके समान सूक्ष्म प्रकाश समष्टि सूक्ष्मचिदचिद्विग्रहकारण ब्रह्मवाचक अकार को व्यक्त प्रकाश समष्टिस्थूलचिदचिद्विशिष्टविग्रहकार्य ब्रह्म प्रतिपादक उकार को 'तत्राऽकारो वै सर्वावाक्" इस श्रुति के अनुसार अभिन्न जाना। अर्थात् राम पद मे रेफ चिन्मयत्व प्रतिपादक विशिष्टकारण ब्रह्म तथा विशिष्ट कार्य ब्रह्म के अभिन्न होने से अकार मे उकार का अभेदेन अन्तर्भाव कर 'अम्' पद सिद्ध होता है। इस प्रकार र्+अम्=राम् पद सिद्ध होता है इसमे पारमेश्वर्य प्रतिपादक अर्धमात्रा अन्तर्भूत समझना चाहिये। इस प्रकार राम् तथा प्रणव ओम् पद मे ऐक्य सिद्ध होता है। तथा जैसे दिन मे देखी वस्तु ही के समान

अथ रामाय नम इत्यंशमुद्धरन्नाह दिवो न दिवसे दृष्टमिव जाग्रद्दशायां दृष्टं वस्तुजात स्वप्नदशायां पुनः सादृश्येन दृश्यते तथेत्यर्थः । पुनारामिति श्रुतिरनन्तर तत्सदृशं रामिति श्रुति व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टकारणब्रह्मप्रतिपादिकांरामिति श्रुति-मित्यर्थः । ददृशे ज्ञातवन्तः । एतेन समष्टिव्यष्टिस्थूलसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टकारणब्रह्मै-क्यं प्रतिपादितमित्यवगन्तव्यम् । एवञ्च रामिति पदान्तरं पठितं रामिति पदंविशि-नष्टि आयन्नक्षत्रमिति । आकारः । य इवाचरतीति यत् यकार । नक्षत्रमिति प्रधान-त्वाच्चन्द्रमाः, तेन च तत्कारणं हृदयं गृह्यते "हृदयान्मनो मनमश्चन्द्रमाः" इति श्रुतेः । यथा "ता अन्नमसृजन्त" इत्यादावन्नशब्देन पृथिवी गृह्यते तद्वत् । आगमे च हृदयशब्दार्थो नमः शब्दः प्रसिद्धः । आकारे यकारे नमः शब्दश्च यत्र तादृशं रामितिपदं रामित्यनन्तर पठेदित्याशयः । एवं "रा रामाय नमः" इति मन्त्र उद्धृतो भवति । तत्र 'आय' इति शब्दयोजनेन रामायेति चतुर्थ्यन्तं पदमुपास्यत्वेन रामस्येप्सिततमत्वं बोधयति । तत्र प्रह्वीभावप्रतिपादकं नमः पदम् । एवं रा रा च तस्मै रां रामाय नमस्करोमीत्यर्थः पर्यवमन्त्रोबोध्यः । तत्प्राप्तिफलमाह यतो यत-मानस्योक्तश्रुत्या श्रीराममाराधयतः । नकिः नकिरतीतस्ततो विक्षिप्यते मन इत्यर्था-द्बोध्यम् । तादृशस्य यतमानस्यस्थिर मनः । अद्धा साक्षात् नु निश्चयेन वेद जानाति । उक्तं मन्त्रं जपन् मन्त्रार्थं श्रीरामं मनसा साक्षात्करोति "मनसैवेदमाप्तव्यम्" इति श्रुतेरिति बोध्यम्" (भगवच्छ्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनसम्पादितवेदरहस्यस्य जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यप्रणीतरहस्यमार्तण्डभाष्यम् १४६) इति । एवञ्च, ऋक्संहिताभागे-ऽप्यस्य श्रीराममंत्रास्योपलब्धिः साक्षादुपपन्नैवेत्युपनिषद्भागे संहिताभागे चोपासासि-द्ध्यर्थमस्य श्रीराममन्त्रस्योच्चार्यमांणत्वमक्षतम् ॥६८॥

रूप से स्वप्न मे देखते है उसी प्रकार ज्ञानियों ने उक्त राम् पद के आगे समष्टि सूक्ष्मचिदचि द्विग्रह कारण ब्रह्म से अभिन्न व्यष्टि स्थूल चिदचिद्विग्रहविशिष्ट कार्य ब्रह्मप्रतिपादक 'राम्' पद पुन देखा। इस प्रकार 'रा राम्' पद सिद्ध हुआ वही मुमुक्षुओ को अभीष्ट है अत ईप्सितत-मत्व बोधक 'आ' तथा 'य' पद देखा। इस प्रकार 'रामाय' यह चतुर्थ्यन्त पद सिद्ध हुआ, तथा अपनी भक्ति प्रतिपादित करने के लिये नक्षत्रों मे मुख्य चन्द्र के कारण हृदय शब्द से प्रसिद्ध मन्त्र–हृदय 'नम' शब्द देखा। इस प्रकार "रा रामाय नम" यह मन्त्र उधृत हुआ। इस मन्त्र की उपासना से उपासकों के चित्त की चञ्चलता दूर होती है। तथा वे निश्चय रूप से उस विशिष्ट ब्रह्म को साक्षात्कार करते हैं। इस प्रकार ऋग् वेद के मन्त्र से "रा रामाय नम" इस मन्त्र का उद्धार तथा फल का कथन किया गया है। इस प्रकार सहिता भाग मे भी श्रीराममन्त्र की उपलब्धि खूब स्पष्टतया है। अत उपनिषद भाग (ब्राह्मण भाग) मे और मन्त्र भाग (सहिता) मे उपासना की सिद्धि के लिये इस श्रीराम मन्त्र का उच्चारण, तथा वर्णन निर्विवाद सिद्ध हुआ ॥६८॥

नवमकल्पस्यार्थस्तु वेदपदेनोपनिषत्प्रभृतिब्राह्मणग्रन्थस्य मंत्रसंहितायाश्च ग्रहणम् तत्सम्बन्धित्वमस्य मनोः स्पष्टतरमेव । यतः कर्मोपासनाज्ञानकाण्डत्रयविभक्तेन वेदराशिना स्वार्थानुष्ठानवतः परमपुरुषार्थावाप्तिरेव चरमं फलमुपदिश्यते । प्राक्कर्मणामुपदेशस्तस्य तात्पर्यं त्विदमेव यत् वेदाधिकृतः कामुको विविधानि विहितानि कर्म्माण्यनुतिष्ठन् तत्फलसाद्यन्तवदुपलभ्य ततो विरज्योपासनापरपर्यायरूपायां भगवद्भक्तावधिकृतो भवति ततोऽप्यनन्यतासिद्ध्यर्थं प्रयतमानो ज्ञानपदाभिहितभगवत्प्रपत्तिगर्भां परभक्तिमुपादत्ते । एवञ्चोत्तरोत्तराभ्यर्हिततमसाधनेधिकारिणमधिष्ठापयन्वेदोऽखिलजननिकायमुपकरोति । तत्रोपासनपरभक्तयोः प्रधानं साधनमिष्टदेवमंत्रमन्त्रार्थानुसन्धानमेवेति मंत्रस्यापि सादरं वेदेन समर्थितत्वमित्यस्यैव वेदपदाभिधेयार्थसम्बन्धित्वरूपं नवमं वैदिकत्वमस्येति ॥६९॥

अथ दशमकल्पलक्षितं वेदोच्चरितानुपूर्वीकत्वरूपं वैदिकत्वं पर्यालोच्यते । वेदपदाभिधेययोः संहितापदाभिधित्सितमंत्रभागब्राह्मणभागयोर्दृष्टानुपूर्वीकत्वमेव तस्यार्थः । तत्र यद्यपि प्रातिस्विकतयोभयत्रापि श्रीराममंत्रस्य वर्णनमस्तीत्येतदस्माभिः पूर्वोदितकल्पविवेचनायां सम्यक् प्रत्यपादि । षष्ठकल्पे ब्राह्मणभागीयोपनिषत्सु तथाष्टमकल्पे

अब नवम कल्प का अर्थ व्यक्त किया जाता है। वेद पद से उपनिषद् आदि जो ब्राह्मण ग्रन्थ है उनका और मन्त्र संहिता का ग्रहण होता है। इन दो भागों का सम्बन्ध इस राममन्त्र से स्पष्ट ही है क्योंकि कर्म उपासना और ज्ञान यह जो काण्ड त्रयात्मक वेद है इससे परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति ही वेदार्थ के आचरण करनेवाले के लिये अन्तिम फल है यह कहा जाता है। वेद में प्रथम कर्मो का उपदेश है इसका तात्पर्य यही है कि वेदाधिकारी भिन्न फलों की कामना वाला अनेक प्रकारके विहित कर्मो का अनुष्ठान करता हुआ वैदिक कर्मो के फल को सादि और सान्त (अर्थात् उत्पत्ति और नाश वाला) जानकर उनसे विरक्त होकर उपासना रूप भगवद्भक्ति में अधिकृत होता है। इस भक्ति से भी उत्कृष्ट अनन्यता सिद्धि के लिये प्रयत्न शील विवेकी पुरुष ज्ञान पद से कही गयी जिसके अन्तर कुक्षि में भगवत्प्रपत्ति आ जाता है ऐसी परभक्ति को ग्रहण करता है। इस प्रकार वेद भगवान उत्तरोत्तर श्रेष्ठ साधनों में तत् तत् अधिकारी को प्रोत्साहित करते हुए प्राणीमात्र का उपकार करते हैं। इन तीनों साधनो मे उपासना और परभक्ति का प्रधान साधन (उत्पादक) इष्टदेव मन्त्र और उसके अर्थका अनुसन्धान ही है। इसलिए मन्त्रों का भी आदर पूर्वक वेद प्रतिपादन करता है। इसलिए वेदपदाभिधेय आदि नवम वैदिकत्व कल्प भी इस श्रीराममन्त्र में भली प्रकार से संगत होता है॥६९॥

अब दशम कल्प से लक्षित वेदोच्चारित० आदि वैदिकत्व का पर्यालोचन किया जाता है। इस कल्प का अर्थ यह है कि वेद पद से कहे जाने वाले मंत्र संहिता और ब्राह्मण भाग में देखी गयी आनुपूर्वी वाला जो हो वह वैदिक कहा जा सकता है। इन दोनो प्रकार में एक एक करके मन्त्र और ब्राह्मण भाग इन दोनों में श्रीराममन्त्र विद्यमान है, यह हमने सिद्ध कर दिया

मंत्रसंहितानाश्चानुपूर्व्यवच्छिन्न एवायं मन्त्रराजः समदर्शि । न चोपनिपन्सु "तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकम्" "स्वप्रकाशः परज्योतिः स्वानुभूत्येकचिन्मयः । तदेव रामचद्रस्य मनोराद्यक्षरस्मृतः । अखण्डैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः । रामायेति सुविज्ञेय सत्यानन्दचिदात्मकः ॥ नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम् । सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षव इतीत्यादौ" एवं सचंत यदुपसः सूर्येण चित्रामस्येस्यादिमंत्रभागे च श्रृंगग्राहिकयास्य मनोरानुपूर्वी समालक्ष्यते । किन्तुक्लिष्टकल्पनयातथानुपूर्वी साम्प्रदायिकैरुपपद्यते नतु शुद्धेति वाच्यम् । मन्त्राणामीप्सितफलसाधकत्वेनातिगोपनीयत्वात्तथैव वेदादिसच्छास्त्रप्रवर्तकाचार्याणां समयस्तन्निरूपणे व्यवहृतो भवति । अत एव 'रामो ऽन्तो वह्निपूर्वो' इत्यादिपौराणिकवचसा सङ्गतिः । दृश्यते पंचरात्रतंत्रशास्त्रेष्वेव प्रकारेणैव गोपनीयार्थानामभिधानम् । एतेन साधारणजनवेद्यत्वाभाव एव साधितो भवति । अयं भावः यथा वेदार्थो दुरधिगमस्तथा मंत्रशास्त्रमपि दुर्ज्ञेयम् । अप्रसादितगुरुचरणास्त्वेनं मंत्रशास्त्रं लेशतोऽपि न ज्ञातुं शक्नुवन्ति ज्ञातुं जातु प्रयतमाना अप्यनधिगतसाम्प्रदायिकाचारतया पदे संशयाना विपरीतमेवार्थमुपाददते । तस्मात्सम्प्रदायाचारचणाचार्यचरणापरिचर्यापरायणेन मंत्रत्वजिज्ञासुना सविधि मन्त्ररहस्यमभ्यसनीयम् । तथा सत्येव श्रद्धाधनेन विनेयेन मंत्रमत्रार्थस्तदनुष्ठानप्रकारश्च सम्यक् शक्यते ऽवगन्तुम् ॥७०॥

है । छटे कल्प मे ब्राह्मण भाग उपनिपदो मे और अष्ठम कल्प मे मन्त्र सहिता मे हमने ठीक आनुपूर्वी विशिष्ट ही यह मन्त्रराज दिखाया है । यहा यह शका की जा सकती है कि उपनिपदों मे "तारकं दीर्घानल" इत्यादि वाक्यो मे और 'सचंतयदुपस' इत्यादि मन्त्रभाग मे मन्त्र दिखाया गया पर वह ठीक शृङ्गग्राहिका रूप से सीधी आनुपूर्वीयुक्त नही वताया गया । क्लिष्ट करके किसी प्रकार साम्प्रदायिक लोगो ने मन्त्र सिद्ध किया है । शुद्ध आनुपूर्वीयुक्त नही वताया गया । इस शका का समाधान किया गया है । मन्त्रो को हमारे सिद्धान्त मे इष्ट फल के देने वाले कहा गया है । अत एव वह अत्यन्त गुप्त रखे जाते है। जिससे सर्वसाधारण इस विपय को न समझ सके । इसी आशय को लेकर 'रामोऽन्तो वह्निपूर्व' इत्यादि पुराण वचनो की सगति होती है । पंचरात्र शास्त्र मे एव अन्य तंत्र शास्त्रमे इसी प्रकार गोपनीय अर्थो के कथन किये जाने की प्रथा है कि जिस प्रकार वेदार्थ दुरभिगम है इसी प्रकार मन्त्र शास्त्र भी अति दुर्ज्ञेय है । जिन्होंने गुरु चरणो की सेवा नही की ऐसे मनुष्य तो इन मन्त्र शास्त्र को लेश मात्र भी नही जान सकते । कदाचित् जानने के लिये प्रयत्न भी करते है परन्तु साम्प्रदायिक आचार के न जानने के कारण पद पद मे संशय को प्राप्त होकर उलटे अर्थ को ही ग्रहण कर बैठते है । इसलिये सम्प्रदायाचार मे प्रवीण श्रीआचार्य (अपने गुरु) चरणों की सेवा परायण होकर मन्त्रशास्त्र जिज्ञासु जन को यथा विधि मन्त्रशास्त्र का अभ्यास करना चाहिये । ऐसा करने से ही श्रद्धाधन शिष्य मन्त्र और मन्त्र के अर्थ को तथा उसके अनुष्ठान को भली प्रकार से जान सकता है ॥७०॥

तथाप्यानुपूर्वीविशिष्टमेवेमं मंत्रराजमस्मिन्कल्पकलितमाम्नाये प्रदर्शयामः । मंत्रब्राह्मणयोराम्नायत्वमित्यनुपदं निरणायि । तत्राथर्ववेदे महानारायणोपनिषदि महायंत्रस्वरूपविवेचनावसरे शिष्येण तद्यंत्रस्वरूपे पृष्टे देशिकस्योत्तरम् । "आदौ षट्कोणचक्रम्" इत्यारभ्य तद्दलकपोलेषु रामकृष्णषडक्षरमन्त्रौ" "रां रामाय नमः" "क्लीं कृष्णाय नमः" षट्कोणेषु सुदर्शनषडक्षरमंत्र इत्यादिकं स्वरवेणैवोच्चारितम् । अत्र च हस्तामलकवद्दरीदृश्यमानो विशुद्धानुपूर्वीविशिष्ट एव श्रीराममंत्रोनिभाल्यत इति विदांकुर्वन्तु पक्षपातविरहिणो विद्वांसः ॥७१॥

एवमस्मत्साम्प्रदायिकमहाचार्यैः पंचसंस्कारपरिगणनावसरे चतुर्थे मंत्रसंस्कारे श्रीरामपद्धतावपि विशिष्टतयाऽभ्यधायि । तत्राप्याथर्वणिकश्रुतौ श्रीरामतापनीयोपनिषदि "ॐ रां रामाय नमः" इत्ययं महामंत्रां स्वकंठरवेणैवोक्तः । एवं सर्वप्रकारणास्य मंत्रराजस्य वैदिकत्वं सिद्धम् । मन्त्रसंहिताभागेऽपि श्रीराममन्त्रस्योपलब्धिः स्पष्टैव । एवं कृतेऽपि विस्तृतविवेचने केषांचिद्धृदयतः शंकापङ्को नापैति चेत्त एव नास्तिकशिरोमणयः साम्प्रदायिकैरभाष्याः । अनेन मंत्र संहिताया एव वेदत्वमपरस्य ब्राह्मणभागस्य चर्षिप्रणीतत्वमिति मन्वानैः सुधारकदलमलंकुर्वद्भिस्सामाजिकैरपि संतोष्टव्यम् ।

तो भी इस दशम कल्प मे 'ठीक आनुपूर्वी विशिष्ट ही श्रीराममन्त्र का वेद मे ठीक उल्लेख है' यह प्रदर्शित करते है । मन्त्र (संहिता) और ब्राह्मण यह दोनो वेद है, यह अभी निर्णय किया गया है। इसमे से अथर्व वेद मे महानारायणोपनिषद मे महायन्त्र के स्वरूप विवेचनके समय शिष्य के इस यन्त्र के स्वरूप को पूछने पर गुरु का उत्तर इस प्रकार है। प्रथम षट्कोण चाहिये इत्यादि विवेचन का आरंभ करके आगे लिखे है कि इस मन्त्रराज के भीतर कमलदल बनाकर उसके कपोल भाग मे श्रीराम षडक्षर औ श्रीकृष्ण षडक्षर मन्त्रो को लिखना चाहिये । आनुपूर्वीयुक्त स्वयं वेद भगवान् निर्देश करते है कि 'रा रामाय नम' "क्ली कृष्णाय नम" इस प्रकार इन दोनो मन्त्रो को लिखे। और छ कोनो पर सुदर्शन षडक्षर मन्त्र लिखना चाहिये । इत्यादि स्वयं वेद मे पठित है । इस स्थल मे हाथ मे आँवले जैसे देखे जाते है इसी प्रकार परम विशुद्ध आनुपूर्वीयुक्त ही श्रीराममन्त्र देखा जाता है इस बात को पक्षपात रहित विद्वान स्वयं जान सकते है ॥७१॥

इसी प्रकार हमारे सम्प्रदायके महान् आचार्योने पंच सस्कार के परिगणन अवसर मे चतुर्थ मन्त्र संस्कार मे श्रीरामपद्धति नामक ग्रन्थ मे विशेष रूप मे आथर्वणिक श्रुति का उल्लेख किया है। श्रीरामतापनी श्रुति से 'ॐ रा रामाय नम' इस प्रकार यह श्रीराममन्त्र निजकंठरवसे ही कहा है। अब वह खिल इस समय उपलब्ध हो या न हो। क्योकि अनेक श्रुतिया ऐसी है जिनको सम्प्रदायाचार्यो ने अपने ग्रन्थो मे लिखा है परन्तु वेदो मे उनका श्रवण नहीं होता तो भी उन श्रुतियों को सब कोई मानते है । इस रीति से इस श्रीराममन्त्र की उपलब्धि स्पष्ट ही है। हमारे इस प्रकार विस्तृत विवेचन करने पर भी किसी के हृदय से शकारूप कीचड न जाता हो तो वह नास्तिक शिरोमणि है और साम्प्रदायिक जनो के भाषण करने योग्य नही है । इस वैदिकत्व के

तदभिमते मंत्रभागरूपे वेदेऽपि श्रीराममनोर्दर्शितत्वात् । ननु 'सचन्ते'त्यादि मंत्रोऽन्यर्थः सामाजिकैः प्रकारान्तरेणैव व्याख्यायते । तदीयव्याख्यायां च न राममंत्रो व्युत्पाद्यत इति कुतस्तत्सिद्धिरितिचेन्मैवं वोचः । नह्येवं राजाज्ञास्ति यत्सामाजिकादिभिर्योऽर्थोवैदिकवाक्यानामवधृतः स एव सर्वैः स्वीकार्य इति । तथा तैर्निरुक्तकल्पशिक्षादिसाहाय्येनार्थोऽङ्गीकृतस्तथास्माभिरपि तत्साहाय्येनैव विशुद्धार्थोऽङ्गीकृतः अतो न कश्चिद्विशेषोऽन्यत्राभिनिवेशादिति सुधियो विभावयन्तु ॥७२॥

अथैवं श्रीराममंत्रस्य वैदिकत्वे सिद्धे तत्प्रसंगादत्र केषामधिकार इत्यपि निर्णीयते । तथाहि "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" इत्याद्यनेकश्रुतिप्रमाणेन भगवत्तत्वावगमरूपब्रह्मविद्याया इष्टमंत्रजपादिष्वपि पर्यवसन्नत्वात्तोपाङ्गगुरूपदेशपूर्वकत्वविधानाच्छास्त्रोक्तलक्षणेनाचार्येण "तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय" इत्यादिलक्षणलक्षिताय शिष्याय यथाधिकार मंत्रो देयः एतदेवान्यत्र निरूपितम् । विष्णुयामलतन्त्रे—

समर्थन से जो लोग मन्त्र संहिता को ही वेद मानते हैं और ब्राह्मण भाग को ऋषियों का बनाया हुआ मानते हैं ऐसे सुधारकम्मन्य सामाजिक भाइयों को भी संतुष्ट हो जाना चाहिये । क्योंकि उनका अभिमत वेद जो मन्त्र भाग है 'इस भाग में भी श्रीराममन्त्र है' यह प्रस्फुट किया गया है॥

कोई यह शंका न कर बैठें कि 'सचन्त' इत्यादि मन्त्र का सामाजिक लोग दूसरे प्रकार से ही अर्थ करते हैं । सामाजिकों के व्याख्यान से इससे राममन्त्र की सिद्धि नहीं होती? अतः इसका समाधान किया जाता है। समाजिक भाई को ऐसा नहीं कहना चाहिये ।

ऐसी कोई राजाज्ञा नहीं है कि सामाजिक आदि ने वैदिक वाक्यों का जो अर्थ निश्चित किया है वही सब विद्वानों को भी स्वीकार कर लेना चाहिये । जैसे उन्होंने निरुक्त कल्पशिक्षादि की सहायता लेकर अर्थ को निश्चय किया है वैसे हमने भी निरुक्तादि के साहाय्य से ही इस अर्थ को स्वीकार किया है । इसलिये केवल अभिनिवेश के सिवाय अन्य कोई विशेष नहीं है । इसको विद्वान महानुभाव स्वयं विचार करेंगे। इस प्रकार यह दश रूप से विभक्त करके 'श्रीराम मन्त्र को वैदिकत्व है' यह सिद्ध किया गया ॥७२॥

अब इस प्रकार श्रीराममन्त्र की वैदिकता सिद्ध हो जानेपर इस प्रसंग से इस मन्त्र के ग्रहण में किसका कैसा अधिकार है यह भी निर्णय किया जाता है । इसका विचार इस प्रकार है । 'तद्विज्ञानार्थ" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से भगवत्स्वरूप का पूर्ण परिज्ञान करना एतद्रूप जो ब्रह्मविद्या है इस विद्या के अन्तर्भूत इष्ट मन्त्र का जप आदि, भगवत्प्रपत्तिजनक समस्त कर्मों का समावेश हो जाता है । और मन्त्र का ग्रहण यथाविधि गुरु से ही करना चाहिये । गुरु को भी शास्त्र में जैसे लक्षण वर्णित हैं वैसा ही होना आवश्यक है । एवं शिष्य के लक्षण 'तस्मै स विद्वान' इस श्रुति में कथित है, उसे उपसन्न, अच्छी तरह प्रशान्त चित्त, और पूर्ण मुमुक्षु होना चाहिये। इन लक्षणों से युक्त शिष्य को उसके अधिकार के अनुसार ही मन्त्रोपदेश करना चाहिये । यही बात अन्य ग्रन्थों में निरूपण की गयी है। विष्णुयामलतन्त्र में लिखा है कि—

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तंत्रकोविदैः ॥१॥
अतो गुरु प्रणम्यैव सर्वस्व विनिवेद्य च ।
गृह्णीयाद्वैष्णवं मंत्रं दीक्षापूर्वं विधानतः ॥२॥
दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परंतपः ।
दीक्षामाश्रित्य निवसेद्यत्रकुत्राश्रमे नरः ॥३॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
न भवन्ति प्रियं तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥४।७३॥

एवं वैष्णवदीक्षायाश्चतुर्भिर्वर्णैरवश्यगृहीतव्यतया स्वाधिकारानुगुण एव वैदिकस्तदितरो वा मंत्रो ग्राह्यः । अत एव विष्णुयामले ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् सच्छूद्रान् सत्स्त्रियोऽपि वा । विष्णुभक्तिरतान् सावृन् दीक्षयेद्विधिना गुरुरिति स्पष्टमभिहितम् । अत्रत्रैवर्णिकानन्तरं सच्छूद्रानिति कथनेन असच्छूद्राणां (अस्पृश्यशूद्राणां) दीक्षानिषेधोऽर्थादापद्यते । हारीतशास्त्रे-ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः । मंत्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि । अत्र शूद्रपदं स्पृश्यशूद्रपरमितरपदञ्च

दीक्षा इस शब्द मे प्रथमाक्षर 'दी' है इसका अर्थ है दिव्यज्ञानदायिनी द्वितीयाक्षर 'क्ष' का अर्थ है पापोको क्षय करने वाली अर्थात् दिव्य ज्ञान को देकर पापो को क्षय करनेवाली है अत एव सर्व आचार्यो ने दीक्षा नाम से इसकी प्रसिद्धि की है ॥१॥ इसलिये गुरु को प्रणाम करके और सर्वस्व निवेदन करके विधि पूर्वक दीक्षा लेते हुए वैष्णव मन्त्र को ग्रहण करना चाहिये ॥२। जप और तप सब दीक्षामूल है इसलिये धर्माधिकारी मनुष्य को दीक्षा का आश्रय लेकर ही जिस किसी आश्रम मे रहना चाहिये ॥३॥ जो अदीक्षित है और वह जप पूजादि कर्म करते है उसका वह कर्म सिद्धिप्रद नही होता जेसे शिलातल मे बीज बोया हुआ जमता नही वैसे ही जान लेना चाहिये ॥४॥७३॥

इस प्रकार वैष्णव दीक्षा चारों वर्णो को अवश्य ग्रहण करनी चाहिये इस दीक्षा मे अपने वर्ण के अनुसार ही द्विजाति को वैदिक चतुर्थ वर्ण को तांत्रिक मन्त्र लेना चाहिये। इसलिए विष्णुयामलतन्त्र मे लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सच्छूद्र (जिन शूद्रो का जल ग्रहण किया जा सकता है) और सत्स्त्रिया यदि विष्णुभक्ति परायण हो तो उनको गुरु सविधि दीक्षा देवे। इस उपर्युक्त वचन मे प्रथम तीन वर्णो को दीक्षा का विधान किया। पश्चात् सत् शूद्र को भी तद्वर्णोचित दीक्षा देना लिखा। सच्छूद्र पद से कथन है अत असत् शूद्रो (अस्पृश्य, असंभाष्य शूद्रो) का निषेध सिद्ध होता है। इस प्रकार हारीत धर्म शास्त्रका भी प्रमाण संग्रह किया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्य अनुलोम प्रतिलोम वर्णो का भी मन्त्र मे अधिकार है वे यदि अनन्य शरण हों तो। इस वाक्य मे शूद्र पद स्पृश्य शूद्रका बोधक है और इतर पद अस्पृश्य अनुलोम प्रतिलोम वर्णो का बोधक जानना चाहिये। यह अर्थ अनेक साम्प्रदायिक प्रमाणो के अनुरोध से सिद्ध होता है। उपर्युक्त इन समस्त अधिकारियों मे भी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको वैदिक मन्त्र

स्पृश्यानुलोमप्रतिलोमवर्णपरमनेकसाम्प्रदायिकप्रमाणानुरोधादिति निज्ञेयम् । तत्रापि त्रैवर्णिकाना सविधि वैदिकस्यैव श्रीराममनोरुपदेशस्तदितरजातीयाना च तांत्रिक स्यैवेति विवेकः । तथाचोक्तं तंत्र शास्त्रे–वैदिकास्तांत्रिकाश्चैव द्वये मुख्या द्विजन्मनाम् । शूद्रानुलोमजातीनां मंत्रास्युस्तांत्रिकाः परम् । अत एव च पञ्चरात्रेशास्त्रे 'नस्वरः प्रणवोंगानि नाप्यन्यविधयस्तथा । स्त्रीणाञ्च शूद्रजातीनां मंत्रमात्रोतिरिष्यते' इत्यादिवचनान्युपपद्यन्ते ॥७४॥

अयमभिप्रायः । द्विजस्त्रीसच्छूद्रानुलोमादिजातीनामुपदेश्यत्वेऽपि तेषामधिकारानुगुण एव मंत्रो देयः द्विजातेस्तु प्रणवस्थानीयबीजविशिष्ट एवोपदेश्यः । तद्भिन्नस्त्रीसच्छूद्रानुलोमजातिभ्य' प्रणवस्थानीयबीजवर्णविरहित एव प्रदेयः । न च बीजवर्णरहितस्य क्षतषडक्षरतया न फलविशेषाधायकत्वमिति वाच्यम् । बीजवर्णरहितत्वेऽपि तदनुगुणवर्णान्तर्योजनेन फलविशेषाधायिनी सुरक्षितैवषडक्षरतेति गृहाण ॥७५॥

यथोक्तमष्टाक्षरमंत्रविद्भिराचार्यैः "तत्रोत्तरायणास्याद्विविन्दुमान् विष्णुरन्ततः । बीजमष्टाक्षरस्य स्यात् तेनाष्टाक्षरता भवेत् ।" एवं प्रकृतमन्त्रेऽपि बीजवर्णस्थानाभिषिक्तेन षट्त्वसंख्यापूरकेण बीजार्थप्रतिपादकेन घटितस्यतत्तदुचितार्थप्रतिपादकत्वम-

को और इन तीन वर्गों से अतिरिक्त समस्त वर्णों को तांत्रिक मन्त्र का ही उपदेश देना चाहिये यह विवेक है । इसी प्रकार तन्त्र शास्त्रों में व्यवस्था देखी जाती है । द्विजवर्ण को वैदिक और तांत्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों का अधिकार है और शूद्र तथा अनुलोमादि जाति वालों को तांत्रिक मन्त्रों का अधिकार है । इस लिये पंच रात्र शास्त्र के इस वचनकी भी उपपत्ति होती है कि स्त्री, शूद्र, आदि वर्णों को स्वर, प्रणव अंग और अन्य विधिको छोडकर केवल मन्त्र प्रदान करना चाहिये ॥७४॥

अभिप्राय यह है कि द्विजवर्ण स्त्री शूद्र और अनुलोमादि वर्ग इन सब को मन्त्रोपदेश देना चाहिये, पर उनके अधिकार के अनुसार ही । द्विजवर्ण को प्रणव स्थानीय बीज वर्ण विशिष्ट ही उपदेश देना आवश्यक है । द्विजेतर स्त्री, शूद्र, अनुलोम, आदि जातियों को प्रणव स्थानीय बीज वर्ण रहितही उपदेश देना चाहिये । बीजवर्ण रहित श्रीराममन्त्र को पूर्ण षडक्षर न होने के कारण विशिष्ट फलदायकता न होगी यह नहीं मानना चाहिये । बीज रहित होने पर भी बीज वर्ण की योग्यता वाले दूसरे वर्ण को उसकी जगह स्थापित कर देने से विशिष्ट फल का देने वाली षडक्षरता पूर्ण सुरक्षित रहती है यही उत्तर समझ लेना चाहिये ॥७५॥

इसी बात को अष्टाक्षर मन्त्र के ज्ञाता आचार्यों ने कहा है। "तत्रोत्तरायण" इत्यादि वाक्य से। इसी प्रकार प्रकृत मन्त्र में भी बीज वर्ण के स्थान पर स्थापित छ की संख्या को पूर्ण करने वाले एव बीज के ही अर्थ को प्रतिपादन करनेवाले वर्णसे युक्त यह मन्त्र भी योग्य फल का देने वाला निर्विवाद सिद्ध हुआ । वह कौन वर्ण है जो बीज के अर्थ को कहता हुआ उसके स्थान पर स्थापित किया जाता है यह जिज्ञासा यदि किसी को हो तो साम्प्रदायिक रहस्य को

व्याहतमिति कतमः सवर्णो बीजार्थमभिधत्ते तत्स्थानाश्रियञ्च लभत इति जिज्ञासा चेद्र-हस्यविदो देशिकवर्या एव समाश्रयणीया इति सर्वमवदातम् ॥७६॥

ननु "न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने" इति महाभारतवचनाद् धनुर्बाणाद्यायुधचिह्नितानां शूद्रत्वमेव नास्ति चाण्डालादीनामत्यन्तनिकृष्टाना दर्शनस्पर्शनसम्भाषणानर्हाणान्तूपदेश्यत्वमेव नास्तीतिकुतो मन्त्रभेद इति चेन्न, श्रुतिस्मृतिसदाचारविरोधात् । तथाहि उत्तरमीमांसाया तद्भाष्ये च शूद्रस्याप्यर्थित्वं सामर्थ्यञ्च विद्यत इतिब्रह्मविद्यायामधिकारः स्यादिति पूर्वपक्षयित्वा, असामर्थ्याच्छूद्रस्य ब्रह्मविद्यायां नाधिकार इति तन्निराचक्रुः सूत्रभाष्यकृतः । नोपनयनवेदानुवचनयज्ञादिष्वनधिकृतस्य ब्रह्मोपासनसामर्थ्यं सम्भवति । अध्ययनविधिसिद्धस्वाध्यायाध्ययनाधिगतज्ञानस्यैव ब्रह्मोपासनोपायत्वादसामर्थ्यमेवेति । तथा च श्रुतिस्मृतयः । "यद्युह्वा एतच्छ्मशानयच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्" तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञीयः" "न शूद्र पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति"। एवमग्न्याधानप्रकरणेऽपि "वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यः" इति त्रैवर्णिकानामेवाग्न्याधानं श्रूयते न तु शूद्रस्यापि ।

विदुरधर्मव्याधादीनान्तु पूर्वजन्माभ्यस्तसमस्तविद्यत्वादिहजन्मनि प्राक्तनसंस्कार-

यथार्थरूप से जानने वाले आचार्यों की ही शरण लेनी चाहिये । इस प्रकार यह सब शंकाओं से रहित है ॥७६॥

अब यहा यह आशङ्का होती है कि महाभारत मे लिखा है कि "भगवान् के भक्त शूद्र नही होते किन्तु वह भागवत विप्र ही कहे जाते हे। सब वर्णो मे वही शूद्र हे जो भगवान् के भक्त नही हे।" इत्यादि बचनो से धनुर्बाणादि आयुधों से बाहु मूल मे चिह्नित ऐसे श्रीवैष्णव शूद्र ही नही कहे जाते और चाण्डाल आदि जो अत्यन्त निकृष्ट वर्ण हे जो देखने के छूने के और भाषण करने के अयोग्य है ऐसे अन्त्यजों को इस मन्त्र की उपदेश्यता ही नही हो सकती। तब मन्त्र मे भेद किस लिये करना चाहिये ।

इस शका का समाधान इस प्रकार है कि ऐसा करने से श्रुति स्मृति और सदाचार मे विरोध आता है । इसका समर्थन इस प्रकार है । उत्तर मीमासा शास्त्र और उसके आनन्दभाष्य मे यह शका उठायी गयी कि 'शूद्र का भी आर्थित्य और सामर्थ्य धारण करने के कारण ब्रह्म विद्या मे अधिकार होना चाहिये । इस पूर्व पक्ष का उत्तर सूत्रकार भाष्यकार इन दोनो ने कह दिया कि, सामर्थ्य न होने के कारण शूद्र का ब्रह्म विद्या मे अधिकार नही है । जिसको उपनयन सस्कार वेदाध्ययन और यज्ञादि मे अधिकार न हो उसे ब्रह्म विद्या मे समर्थ नही माना जाता। क्योंकि "स्वाध्यायोऽध्येतव्य" इस अध्ययन विधि से प्राप्त जो वेदज्ञान है वह वेदज्ञान ब्रह्मोपासन का उपाय है । और शूद्र कोवेदाध्ययन का निषेध है अतएव उसे असामर्थ्य है। इस विषय मे श्रुति और स्मृति के प्रमाण दिये जाते हे । 'यद्युह्वा' इत्यादि। भावार्थ यह है कि शूद्र श्मशान की भांति सदा अपवित्र रहता है इस लिये शूद्र के समीप मे भी वेद नही पढना चाहिये । इस

वशाज्ज्ञानवत्त्वमिति न कश्चिद्विरोधः । तस्मान्न ब्रह्मविद्यायां शूद्रस्याधिकारः सम्भवति । तदभावे च परमवैदिके बीजवर्णविशिष्टे षडक्षरश्रीराममनावपि न तेषामधिकारस्तस्यापि ब्रह्मविद्यात्वाविशेषादिति सिद्धम् ।

एवं तर्हि 'न शूद्राभगवद्भक्ताः विप्राभागवताः स्मृताः' इत्यस्यका गतिरितिचेच्छृणु नानेन वाक्येन शूद्रभगवद्भक्ते शूद्रत्वं निषिध्य विप्रत्वं विधीयते । विधिपदाश्रवणात् न च विधिपदाध्याहारः कर्तव्यः श्रूयमाणस्मृतपदार्थविरोधापत्तेः । नहि भागवता विप्राः स्मृताः ज्ञेयाश्चेति शक्यते वक्तुम् वाक्यभेदापत्तेः तस्मादस्य वाक्यस्यायमेवार्थः । भगवत्प्रसत्तिहेतुभूततदनन्यभक्तिवशीकृतान्तःकरणत्वाद्भगवतास्वीयत्वेन स्वीकृता विप्राः स्मृताः इत्यधिकारिविप्रगत्यर्हा इत्यर्थः ।

अस्मिन्नर्थे भगवद्वाक्यमेव प्रामाण्यम्भजते । "मां हि पार्थ ? व्यपाश्रत्य येऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्" । अत्र भगवदाश्रितानामपि स्त्रीवैश्यशूद्राणां पार्थक्येन निर्दिश्य परगतित्वबोधनात् पुरोदीरितार्थ एव तात्पर्यलाभात् । एवमेव "सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने" इत्यादौ शूद्राः शूद्रगत्यर्हा एष एवार्थोऽभ्युपेयः । एवं चानेकप्रमाणव्याकोपप्रसंगोऽपि दूरोत्सारितो भवति सर्वं समञ्जसम् ।

इतः परमतिसंक्षेपान्मंत्रार्थो निरूप्यते । रहस्यग्रन्थेषु जपकर्मीभूतस्य मन्त्रस्य

लिये शूद्र बहुत पशु रखने वाला होता है और यज्ञ का अनधिकारी होता है। शूद्र के लिये पातक नही है और वह संस्कार के योग्य नही होता। इसी प्रकार अग्न्याधान प्रकरण में श्रुति से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णो के लिये विधान किया गया शूद्र के लिये नही।

विदुर और धर्मव्याधनेतो पूर्व जन्म मे ही पूर्णतया सब विद्याएँ पढ ली थी। परन्तु किसी उग्र कर्म से शूद्र शरीर प्राप्त हो गया था। इस शरीर मे भी पूर्व के प्रबल संस्कारो से सब स्मृति और जातिस्मर ज्ञान बना था। इससे वह पूर्णज्ञानवान थे। अत कोई विरोध नही होता। इसलिये शूद्र को ब्रह्म विद्या मे अधिकार असम्भव है और इसमे अधिकार न होने से बीजवर्ण संयुक्त श्रीराममन्त्र मे भी अधिकार नही है। क्योकि यह भी ब्रह्म विद्या ही है। यह निर्विवाद सिद्ध हुआ।

अब 'न शूद्रा भगवद्भक्ता' इसकी क्या दशा होगी यह शंका हो तो सुनिये। इस वाक्य से शूद्र भगवद्भक्त मे शूद्रत्व का निषेध करके विप्रत्व का विधान नही किया जाता। क्योकि वहा विधि पद का श्रवण नही है और विधि पद का अध्याहार भी नहीं हो सकता। क्योकि श्रूयमाण स्मृत पदार्थ का विरोध होगा। भागवत कहे जाते है और जाने चाहिये ऐसा अर्थ करने से वाक्य भेद होगा इसलिये इस वाक्य का यह अर्थ है कि भगवत के अनुग्रह के कारण अनन्य भक्ति से जिनके अन्त करण वशीकृत है ऐसे भक्तों को प्रभु ने अपने करके स्वीकृत किये है वे विप्र है। अर्थात् वे अधिकारी विप्रगति के योग्य है।

सार्थकस्यैव मननीयत्वेन फलविशेषाधायकत्वम् । एवं स्थितेऽर्थसापेक्षत्वमायातम् । तत्र वैदिकानां मन्त्राणामर्थो द्विविधो भवति । एकः साधारणः यो ह्याशु समस्तजनप्रतिपत्तिगोचरतामुपगच्छति । अपरश्च साम्प्रदायिकरहस्यवेदिवेदनविषयः । तत्र चतुर्थ्यन्तपदेन मनसा च योर्थोऽवबुध्यते स साधारणः । यश्चापरोर्थः साम्प्रदायिकविज्ञानाञ्जनोद्दिक्तनयनैर्निर्णीतः स एवात्र प्रदर्श्यते । तथाहि प्रकृतेऽस्मिन् मन्त्रराजे प्रथमो रामिति बीजवर्णो विद्यते । अयञ्च प्रणवकारणतया तत्वविद्भिरुपदिश्यते । एवमेव श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे श्रीमदाचार्यपादैरभ्यधायि । "यावद्वेदार्थगर्भे प्रणवि जगदुदाधारभूतं सविन्दु सुव्यक्तं रामबीजमित्यादिना । अत्र चाचार्यपादैः यावद्वेदार्थगर्भमित्यनेन तारकमंत्रराजाग्रवर्तिबीजवर्णो विशेषितः । अनेन चाखिलवेदार्थगर्भत्वं रामिति बीजवर्णस्य सिद्धम् । तच्चेत्थं गायत्र्याः समस्तवेदमयत्वात्तत्प्रतिपाद्यश्च सवित्रन्तर्वर्तिभर्गवत्शब्दाभिहितपरमपुरुषपदवेद्यो भगवान् श्रीराम एवेत्यनेकप्रमाणैरवसीयते । सनत्कुमारसंहितादिषु "सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् । नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम्" इत्यादिवाक्यैस्तथादर्शनात् । एवञ्च स एवात्र रशब्देनाभिधीयते । तस्माद्युक्तमेवाखिलवेदार्थगर्भत्वमस्य ।

अत एवोक्तमाचार्यैः—"यथैवं वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः । तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्" इति । अतएव च स्मृतौ—"सर्ववेदाश्रयत्वाच्च सर्वलोकस्य कारणात् । ईश्वरप्रतिपाद्यत्वादखण्डब्रह्मवाचक" इति स्पष्टमभिहितम् ।

इस अर्थ मे श्रीभगवान का वाक्य ही प्रमाण है। वह वाक्य यह है कि 'हे अर्जुन ! मेरे आश्रित जो स्त्री वैश्य और शूद्र आदि पाप योनियाँ है वह भी पर गति को प्राप्त हो जाती है" इस भगवद्वाक्य मे भगवदाश्रित ऐसे स्त्री शूद्रो को पृथक् निर्देश करके पर गतिका बोध किया है । इससे पूर्व कथित अर्थ का ही लाभ होता है । इसी प्रकार 'सर्ववर्णेषु' इत्यादि वाक्यों मे जहा जहा शूद्रादि पद है उनका 'शूद्रादि गति के योग्य है' यही अर्थ स्वीकार करना चाहिये । इस प्रकार अर्थ मानने से अनेक प्रमाणों का व्याकोप प्रसंग दूरोत्सारित होता है । अत सब समंजस है ।

अब इससे आगे अति सक्षेप से मन्त्रार्थ का निरूपण किया जता है। रहस्य ग्रन्थों मे जपनीय मन्त्र को अर्थ सहित ही जप करने से फल विशेष दातृता है। जब ऐसा है तब अर्थ सापेक्षता सिद्ध हुई । वैदिक मन्त्रो का अर्थ दो प्रकार हुआ करता है। एक—साधारण होता है जिसका सब मनुष्यों को शीघ्रतया ज्ञान हो जाता है दूसरे अर्थ को केवल साम्प्रदायिक रहस्य जानने वाले ही जान सकते है । इन दोनो मे चतुर्थ्यन्त पद से और नम पद से जो अर्थ स्वरसत निकलता है वह साधारण है और जो दूसरा अर्थ साम्प्रदायिक विज्ञान रूप अंजन से परिष्कृत नेत्र वाले पूर्वाचार्यो से निर्णीत है वही यहा दिखाया जाता है। इस श्रीराममन्त्र मे प्रथम 'रा' यह बीज वर्ण है । यह प्रणव का कारण है ऐसा तत्ववेत्ताओं ने कहा है। और इसी प्रकार श्रीवैष्ण

अत एव च "विश्वरूपस्य ते राम विश्वशब्दा हि वाचकाः। तथापि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषा बीजमक्षयम्"। इति स्कान्दवचः संगच्छते।

अनेन सर्वेषां शब्दानां मूलकारणं रामशब्द एवेति सर्वशाखाप्रत्ययन्यायेन साधितं भवति। अत एव आचार्यपादैः प्रणवीत्युक्तम्। प्रणवश्चोंकारः स अस्मिन् विद्यत इति प्रणवि। अनेन प्रणवजनकत्वं रामनाम्नः सिद्ध्यति। तथा चोक्तं महारामायणे "अंशाशै रामनाम्नश्च त्रयः सिद्धा भवन्ति हि। बीजमोंकारः सोहंच सूत्रमुक्तमिति श्रुतिः।" स्मृतावपि "प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजं श्रेष्ठं तथापरे। तत्तुते नामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम्।" अत एव केचिद् पृषोदरादित्वमङ्गीकृत्य वर्णविपर्ययेण तारकषडक्षरमंत्रबीजतः प्रणवं साधयन्ति। तदपि युक्तमुपदर्शितप्रमाणपर्यालोचनेनेत्यलं रहस्यवित्सु।

एवञ्चास्य श्रीराममनोरुपरिष्टाद्रहस्यविद्भिः षट्पदान्युदाहृतानि। तत्राद्यं पदं रामितिबीजघटकाद्यावयवभूतं रेतिलुप्तचतुर्थीकं पदम्। एतच्च पदं क्रीडादीप्त्यादानपालनाद्यर्थकैरमिराजिरातिरक्षीस्यादिभिर्निष्पद्यते। तद्वाच्यश्च सर्वकारणकारणः सर्वशक्तिविशिष्टो भगवान् श्रीरामचन्द्र एव। तेन चाखिलस्य जगतः समुत्पादनपालनलयकर्तृत्वं सर्वेश्वरे भगवति श्रीरामे स्पष्टमुट्टंकितं भवति अव्युत्पन्नरशब्दस्याप्ययमेवार्थोऽभ्युपेयः श्रुतिसम्मतः।

वमताब्ज भास्कर मे श्रीमदाचार्य चरणो ने भी यावद्वेदार्थ इत्यादि वाक्य से कहा है। इस वाक्य मे आचार्य चरणों ने 'यावद्वेदार्थगर्भम्' इस पद से तारक मन्त्रराज के अग्र भाग मे स्थित बीज वर्ण को विशिष्ट किया है। इससे समस्त वेदो का अर्थ इसके भीतर समाया हुआ है यह सिद्ध होता है। वह इस प्रकार से गायत्री को सर्व वेदरूपा माना गया है और गायत्री से प्रतिपादित सूर्य के अतरवर्ती भर्ग शब्द से कथित परम पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही है। यह अनेक प्रमाणों से निश्चित है। "सूर्य मण्डल म श्रीसीता महाराणीजी के साथ श्रीरामजी विराज मान है मै उनको नमस्कार करता हूं" इत्यादि सनत्कुमार सहिता मे लिखा है। अत वही यहाँ पर 'र' शब्द से कहे जाते है। इसलिये अखिल वेदों के अर्थ का समूह इसमे युक्त ही है। इसलिये "यथैव" इत्यादि वाक्यों से आचार्यो ने कहा है।

इस उपर्युक्त विवेचन से सब शब्दो का मूलकारण राम शब्द ही है यह सर्व शाखा प्रत्यय न्याय से सिद्ध होता है। इसी लिये परमाचार्य चरणो ने इसे प्रणवी कहा है। अर्थात् प्रणव (ओंकार) का यह कारण है। यही महारामायण मे भी कहा है कि रामनाम के ही अश से बीज, ओंकार और सोह यह तीन शब्द सिद्ध होते है। स्मृति मे भी यही बात मिलती है। कितने प्रणव को श्रेष्ठ मानते है और कितने बीज को परन्तु मेरा मत है कि वह श्रीरामनाम के वर्णो से ही सिद्ध होता है। इसीलिये विद्वान् लोग इसी तारक षडक्षर मन्त्र के बीजवर्ण से पृषोदरादि मान

द्वितीयमेति प्रथमान्तं पदम्। तदर्थश्चाखिलजगद्योनिर्जगतामधीश्वरी श्रीरामाभिन्नस्वरूपरूपलीलानामधामाधिराज्ञी भगवती श्रीसीतैवोच्यते । रक्षणाद्यर्थकाऽवधातोन्निष्पन्नस्याप्यस्य पदस्यायमेवार्थोऽवसेयः सिद्धान्ते महाराज्ञ्याः श्रीजनकनन्दिन्याः पुरुषकारत्वेन स्वीकृततया शरणगताञ्जीवाननन्तदिव्यगुणधाम्न्यभिमुखीकृत्य साकेतधाम्नि नित्यलीलाविलासानुभवप्रदापयितृतया रक्षकत्वंतस्यां श्रियः श्रियां स्पष्टमेव संगच्छते। एवमवधातोर्व्युत्पादितस्यास्य सर्वेप्यर्थाः स्वकीयदेशिककृपाकटाक्षेण जिज्ञासुजनैरवगन्तव्याः । श्रीराममनोरेतद्द्वितीयपदार्थपर्यालोचनं देवतान्तरशेषत्वनिवृत्तिपुरस्सर भगवदनन्यार्हशेषत्वं दृढयति। न चाकारस्य श्रीपदबोध्यसीतावाचकत्वं न सम्भवति नामनिरुक्तिव्याकृत्यादिषु तथाविधार्थस्यादृष्टत्वादिति वाच्यम्। 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।'' 'रकारेणोच्यते रामः श्रीरकारेण ह्युच्यते। मकारस्तु तयोर्दासः' ।। ''रकारमकारयोर्मध्येऽकारेण सीतोच्यते'' इत्यादिसाम्प्रदायिकप्रमाणैस्तथार्थावधारणात् ।

श्रीराममनोस्तृतीयं पद हर्षावबोधनपरिणामज्ञानाद्यर्थकैर्मदिमनिमसिमन्यादिभिर्निष्पद्यते। पारतन्त्र्यादिगुणविशिष्टजीववाचकात्मञ्च्छब्दस्यच्छान्दसत्वेन मकारातिरिक्तयोः पूर्वोत्तरभागयोर्लोपेनापीदं सिद्ध्यति । एतत्पदवाच्यश्च ज्ञानानन्दगुणको ज्ञानाश्रयोऽजः करणकलेवरविलक्षणः पारिमाण्डल्यवद्भगवदनन्यार्हशेषभूतो भगवत्कैकर्याधिकारी जीव एव । इत्थमनेन मंत्रराजबीजपदत्रयेण चिदचिद्विशिष्टं श्रीरामाख्यम्परं

कर वर्ण विपर्यय करके प्रणवकी सिद्धि मानते है। ऊपर कहे हुए प्रमाणो के पर्यालोचन से यह भी ठीक है ।

इस प्रकार रहस्यवेत्ताओ ने इस श्रीराममन्त्र के पद्पद कहे है। इनमे प्रथम पद बीज मे लुप्त चतुर्थीक 'र' यह पद है। यह पद, क्रीडा दीप्ति, आदान और पालन आदि अर्थ वाले रम राज् रा रक्ष धातुओ से औणादिक ड प्रत्यय करने पर तथा चतुर्थी विभक्ति का सुपा सुलुक्० इत्यादि सूत्र से लोप करने पर सिद्ध होता है। इस पद का अर्थ सब कारणो के भी कारण सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही है। इससे सब जगत् के उत्पादन पालन और लय के कर्ता भगवान् श्रीरामजी ही सिद्ध होते है। अव्युत्पन्न 'र' शब्द का भी यही अर्थ श्रुति सम्मत है।

दूसरा पद 'अ' प्रथमान्त पद है। इसका अर्थ समस्त जगत् की उपादानकर्त्री जगदीश्वरी श्री रामजी से अभिन्न स्वरूप रूप लीला नाम और धामकी अधिष्ठात्री भगवती सीताजी है। रक्षणाद्यर्थक अव् धातु से व्युत्पादित 'अ' पद का भी यही अर्थ है। सिद्धान्त मे महारानी श्रीजनकनन्दिनीजी को पुरुषकार रूप से माना गया है इसलिये शरणागत जीवो को अनन्त दिव्यगुणधाम श्री रामजी के सन्मुख करके दिव्य साकेत धाम मे नित्यलीला विलास का अनुभव प्रदान करने के कारण रक्षकत्व अम्बाजी मे स्पष्ट ही है। अव् धातु से निष्पन्न इस शब्द के सब अर्थ स्वकीय आचार्य की कृपा कटाक्ष से जान लेने चाहिये। कोई यह शका करते है कि कोश व्याकरण

ब्रह्मैवाभिधीयते । बीजघटकयोरयोः पदयोर्मध्यगं द्वितीयं पदं स्वरूपतोर्थतश्चाद्यतृतीयपदतद्वाच्याभ्यां सह सम्बन्धमप्यभिधत्ते । मंत्रार्थानुसन्धाने तु मवाच्योऽहं जीवो न स्वतन्त्रः किन्तु रवाच्ययोरखिललोकपरिवृढश्रीजनकनन्दिनीरघुनन्दनयोश्शेषभूतोऽनन्यार्ह इति समुदितेन बीजेनावगन्तव्यम् ।

तुरीयं पदं रामायेति चतुर्थ्यन्तमेव । तेनाखिलचेतनात्मकप्रपंचस्य श्रीसीतादेव्याश्च रमयितृत्वमभिधीयते । रामपदेन नित्यविभूतिनायकत्वविशिष्टोभयलिंगत्वं सार्वदिकं भगवति श्रीरामे व्युत्पादितं भवति । तदुत्तरचतुर्थ्याच्चास्य जीवस्य सर्वविधबन्धुत्वविशिष्टोत्कृष्टत्वशालिनो नित्यस्वामिनः स्वेष्टदेवस्य कैंकर्यं प्रतिपाद्यते । जीवाना स्वशरीरधारणं शरीरेण च यद्यत्प्रवर्तनं तत्सर्वं स्वामिनः सेवार्थमेवेति तात्पर्यम् । एतेनैतच्छरीरधारणं कैंकर्यार्थं तच्च निर्हेतुकस्वामिनः श्रीरामस्यैवेति फलितम् । एवं नेति पंचमपदेनेतरविनियोगामनर्हत्वमभिधाय भगवदनन्यशेषत्वमाविष्क्रियते । षष्ठेन म इति षष्ठ्यन्तपदेन स्वामिश्रीरघुनन्दननिरूपितमेव स्वत्वमस्मिञ्जीवे विद्यते नत्वन्यनिरूपितमिति ज्ञाप्यते । पारतन्त्र्यादिविशिष्टोप्ययं जीवस्वेष्टकैंकर्यकप्रयोजनो भगवच्छेषतया तत्परतन्त्र एव नान्यस्य कस्यचिज्जातु पारतन्त्र्यमावहतीति सिद्धान्तोऽनेन निष्पद्यते । तन्त्रादिना खण्डनमसाचोपायोऽपि प्रतिपाद्यते । एवञ्चोपेये परमपुरुषे स एवोपाय इति सैद्धान्तिकोऽप्यर्थोऽनुगृहीतो भवति । अथ च रामिति समुदितेनानन्यशेषत्वं रामायेति समुदितेनानन्यभोग्यत्वं नम इति समुदितेन चानन्योपायत्वमित्यप्यापाततोऽवगम्यते । अष्टपदपक्षेऽप्ययमेवार्थो बोध्यः ।

के विरुद्ध होने के कारण 'अ' को श्रीसीता वाचकत्व नही हो सकता। इसका उत्तर 'अनन्या' इस वाल्मीकि मुनि के प्रयोग से तथा 'श्रीरकारेणोच्यते' इस वचन से श्रीसीता वाचकत्व उपपन्न होता है ।

श्रीराममन्त्र का तीसरा पद हर्ष, अवबोधन, परिणाम और ज्ञान आदि अर्थ वाले मद् मन् मस् मन आदि धातुओं से निष्पन्न होता है। एवं परतन्त्रत्वगुणविशिष्ट जीववाचक आत्मन् शब्द के मकार से अतिरिक्त पूर्व के और उत्तर के भागो का लोप होने पर भी सिद्ध होता है । मन्त्र को तथा इसके बीज को छान्दस होने के कारण लोप होने मे कोई बाधक नही है। इस पद का अर्थ जीव ही है । वह जीव ज्ञान और आनन्द गुण वाला है और ज्ञान का आधार है अजन्मा है देह और इन्द्रियोसे भिन्न है अणु परिमाण वाला है भगवान् श्रीरामजी का शेष भूत है और भगवत्कैंकर्य का अधिकारी है, इस प्रकार इस मन्त्र राज के बीजस्थ तीन पदो से चिद चिद्विशिष्ट श्रीराम ब्रह्मका ही बोध होता है। बीज के मध्य मे द्वितीय पद स्वरूप से तथा अर्थ से भी प्रथम तृतीय पद और उसके वाच्य श्रीरामजी के साथ सम्बन्धका भी बोधक है । मन्त्रार्थ का अनुसन्धान करना हो तो 'म' पदवाच्य मै जीव स्वतन्त्र नही हूं किन्तु 'र' 'अ' से वाच्य सकल लोक के नाथ श्रीसीतारामजी का अनन्यार्ह शेष हूं यह अर्थ बीज से जानना चाहिये ।

अत्र भगवच्छरीरभूतस्यात्मनो नवविधः सम्बन्धस्तत्तत्पदार्थमहिम्नाप्रत्यपीपपदञ्छास्त्रदर्शिनो देशिकवर्याः । तत्राखिलजद्वीजवाचिबीजस्थमाद्यं पदं रक्ष्यरक्षकपितापुत्रत्व सम्बन्धावभिधत्ते । तदुत्तरतिरोहिततूर्यविभक्तिः शेषशेषित्वमुदीरयति । अनन्तरमनन्यार्हत्ववाचकाकारोऽर्पयति भार्याभर्तृभावम् । ततो मितिपदं स्ववाच्यमात्मानमुदीरयद्दृढयति स्वस्वामिभावसम्न्धम् । रामपदंतदव्यवहितचतुर्थी च व्याचक्षातेऽर्थस्वारस्यगम्यौ क्रमेणाधाराधेयसेव्यसेवकत्वसम्बन्धौ । एवमखण्डं नम इति पदं ब्रूते शब्दबलायात शरीरशरीरिभावापरपर्यायमात्मीयत्वसम्बन्धम् । ततो म इति षष्ठं पदमुपदिशति भोग्यभोक्तृत्वलक्षणं विलक्षणं सम्बन्धम् । भगवन्नियाम्यस्यात्मनः परमपुरुषेण साकमिमान् सम्बन्धान् स्वकीयाचार्यचरणसेवयावगम्यसर्वथासद्भावः स्थिरीकर्तव्य इत्येतत्फलं विज्ञानस्य । एष्वपि सम्बन्धेषु सेव्यसेवकभावाख्यः संबन्ध एव प्राधान्येन परमाचार्यसम्मतः सुगमतया ग्राह्यश्च इत्थमेतत्सर्वमाकलय्य श्रीरामांघ्रिपंकजदासभूतेनानेन जीवसेवकेन स एव दीनबन्धुः शरणागतवत्सलोऽखिलहेयप्रत्यनीकनिरतिशयोज्ज्वल्यसौंदर्य्यसौगन्ध्यसौकुमार्यसौशील्यवात्सल्यसौहार्दमाधुर्योदार्यगाम्भीर्यकारुण्यचातुर्यस्थैर्यधैर्यलावण्यनवयौवनसत्यकामत्वसत्यसन्धत्वज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याद्यपरिमितस्वाभाविकानवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणनिधिर्विश्वामित्रवशिष्ठपरा--

चौथा पद 'रामाय' यह चतुर्थ्यन्त है। इसका अर्थ अखिल जगत् के और श्रीसीतादेवी के रमण करनेवाले श्रीरामही है । राम पदसे लीलाविभूति और नित्य विभूतिके नायक नित्य निर्दोष और कल्याण गुण वाले श्रीरामजी ही है यह सिद्ध होता है। इस पद के पश्चात् चतुर्थी विभक्ति कर के अपने इष्ट देवका कैंकर्य कहा जाता है । जीवका शरीर धारण करने का फल भगवत्सेवा ही है । सिद्ध यह हुआ कि श्रीराम कैंकर्य के लिये ही शरीर है और कैंकर्य भी स्वामी श्रीरामजी का ही करना चाहिये । इसी रीति से 'न' यह पञ्चम पद है । इस पद से भगवदनन्यशेषता कही जाती है । पष्ठपद 'म' यह षष्ठी विभक्ति वाला है इस पद से श्रीराम भगवान का ही स्वत्व इस जीव मे है अन्य किसी का नही यह कहा जाता है । इससे परतन्त्र यह जीव एक अपने इष्ट देव श्रीरामजी के ही अधीन है अन्य किसी के नही, यह सिद्धान्त निष्पन्न होता है। तन्त्र अथवा आवृति करने पर अखण्ड 'नम' पद से उपाय का प्रतिपादन भी होता है । इससे उपेय श्रीरामजी की प्राप्ति के उपाय भी वही है यह भी सिद्ध होता है ।

इस मन्त्र के बीज वर्णसे श्रीरामजी को अनन्यशेषता 'रामाय' पदसे श्रीरामानन्यभोग्यत्व औ 'नम' इस पद से श्रीरामानन्योपायत्वका भी प्रतिपादन होता है । इस मन्त्र के आठपद है यह भी एक पक्ष है । इस पक्ष मे भी अर्थ समान है ।

इस मन्त्र मे भगवान् के साथ सम्बन्धो का भी वर्णन पदार्थ स्वारस्य से हो जाता है शास्त्रदर्शी आचार्योने ऐसे ही माना है । इनमे प्रथम पद से 'रक्ष्यरक्षकत्व' पिता पुत्रत्व' इनका बोध होता है । इसके आगे लुप्त चतुर्थी से शेषशेषित्वका एवं द्वितीय पद से भार्याभर्तृत्वका बोध होता है ।

शरागस्त्यसुतीक्ष्णादिमुनिजनैरनिशं तोष्टूयमानः श्रीभरतशत्रुघ्नहनुमद्विभीषणसुग्रीवादि-परिकरनिकरवन्दितचरणनलिनः परमव्योमादिशब्दभाग्दिव्यसाकेतधामामरतरुसमुद्भा-सितरत्नसिहासनासीनो नवनीरदकान्तिकमनीयमनोहरः श्रीसीतासमेतो मदीयप्राणा-धिकप्रियतमश्रीरघुवरः संसेव्यः सर्वदेति सिद्धम् ॥

॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ॥

माघमासे वैक्रमाब्दे गुणांकनवभूमिते । कृष्णपक्षे च सप्तम्या जगद्गुरुजनुर्दिने ॥१॥
श्रीमान् रघुवराचार्यो वाग्मी शेषमठाधिपः । श्रीमंत्रराजमीमासामनयत् पूर्णता शुभाम्॥२॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यजगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दमुनीन्द्रान्वयप्रतिष्ठितसप्त-त्रिशद्द्वारपीठपरिगणितप्रधानपीठपतिश्रीमदनुभवानन्दाचार्यस्वामिवंशाम्बुधि पूर्णचन्द्रेण श्रीबालाजीस्थानाभिजनेन, न्यायमीमांसोपाध्यायेन तर्कवेदा-न्ततीर्थेन वेदन्तशिरोमणिदर्शननिधिनाशतावधानिना महामहो-पाध्यायजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यस्वामिश्रीरघुवराचार्य वेदा-न्तकेसरिणा विरचिता श्रीमन्त्रराजमीमांसा समाप्ता ।

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

'राम' इससे और चतुर्थीसे 'आधाराधेयत्व' और सेव्यसेवकत्वसम्बन्ध कहे जाते है । और अखण्ड 'नम' पद से शरीर शरीरित्वरूप सम्बन्ध कहा जाता है । 'म' यह छठापद भोग्य भोक्तृ-त्वरूप विलक्षण सम्बन्ध का भासक है । अपने आचार्य चरणो की सेवा करके इन सम्बन्धो का पक्का ज्ञान करना आवश्यक हे । भगवान् मे सद्भाव धारण करना यही विज्ञानका फल है । इन सम्बन्धो मे भी सेव्य सेवक भाव ही अस्मत्संप्रदाय के परमाचार्यो को प्रधान रूप से इष्ट है औ सुगमतया ग्राह्य है । इस प्रकार यह सब अपने हृदय मे विचार कर श्रीरामचरण के दास भूत इस जीव सेवक को वही दीनबन्धु शरणागतवत्सल उपरोक्तगुणयुक्त (मूलग्रन्थ मे जो भगवान् श्रीराम को स्वरूप वर्णित है तदनुसार) श्रीसीताजी समेत भगवान् श्रीरघुनाथजी ही सर्वदा ससेव्य है यह सिद्ध हुआ ।

इस श्रीमन्त्रराजमीमासा को विक्रम सवत् १९९३ के माघ कृष्ण पक्षकी सप्तमी को
अर्थात् जगद्गुरु भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य की अवतार तिथि को विश्राम
द्वारकास्थपश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठ श्रीशेषमठ शीगडाके
अधिपति वाग्मीस्वामी श्रीरघुवराचार्यजी महाराज
ने सज्जन वैष्णवो की प्रसन्नता के लिये
लिखकर पूर्ण किया